

सुखी गृहस्थ



महात्मा आनन्द स्

आ. ५

सुखी गृहस्थ



लेखक

दिवंगत महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती



गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, दिल्ली-११०००६

संस्करण, सितम्बर, १९८१

मूल्य : 3.00

मुद्रक :
हरजीत आर्ट प्रेस, दिल्ली

◈ ओ३म् ◈

क्यों ?

क्या कारण हुआ मेरे इस लघु पुस्तक के लिखने का ?

संन्यास की दीक्षा लेने से पूर्व मुझे बहुत भ्रमण करना होता था और संन्यास के पश्चात् तो इस भ्रमण में और अधिक वृद्धि हो गई। सहस्रों परिवारों की आन्तरिक अवस्था और व्यथा देखने का पर्याप्त समय मिला। आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध पिता-पुत्र का है, या सेवक-स्वामी का ? मित्र-सखा का है या प्रियतम-प्रेमी का ? ज्ञान ही पर्याप्त है या इसके साथ प्रेम-भक्ति भी अनिवार्य है ? योग की साधनाओं से वह नज़र न आनेवाला मिलता है या केवल आत्म-समर्पण से मिलता है ? इसी प्रकार की कितनी ही उलझनों को सुलझाने का अवसर मिला। यह भी अनुभव हुआ कि दुनिया के लोगों के विचारों में अत्यधिक भयंकर परिवर्तन आ चुका है। अब कन्दराओं में बैठकर भजन करनेवालों की संख्या थोड़ी रह गई है। जनता भक्ति तथा योग को अब इस दृष्टि से देखने लगी है कि ये मानव-जीवन को सुखी बनाने में कितने उपयोगी हैं ? और यदि ये जीवन में काम नहीं आते तो ये केवल आडम्बर हैं और समय को व्यर्थ खोना है।

सर्वसाधारण के इस विचार के साथ एक सीमा तक मैं भी सहमत हूं। आधुनिक काल का मानव माया ही को मुख्य समझने लगा है। शारीरिक सुख-आराम ही के साधन जुटाने में मानव ने अपने-आप को बुरी तरह उलझा रक्खा है और उसे मानसिक शान्ति लेशमात्र भी प्राप्त नहीं। यदि योग-साधना तथा भक्ति मानव की इस त्रुटि को दूर कर सकें, तभी तो मानव इनका मूल्यांकन कर सकेगा। परन्तु मैंने देखा है कि दुनिया का वातावरण दूषित हो तो भक्ति हो नहीं सकती। कितने ही परिवारों की ओर से मुझे कहा गया कि आत्मा-परमात्मा की बातें तो यथार्थ हैं, परन्तु जब तक गृहस्थाश्रम की अवस्था नहीं सुधरती तब तक वातावरण के वृक्ष के पत्तों पर भक्ति का जल सिञ्चन करने से कुछ बन न सकेगा। आज की दुनिया का सबसे बड़ा आश्रम

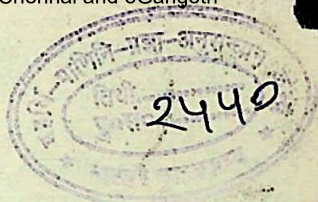
गृहस्थ ही है और वही ऐसी अवस्था में पहुँच गया है कि उसपर गुरु जी का वचन—

"नानक दुखिया सब संसार"

ठीक घटता है। मुझे कहा गया है कि इस समय सबसे बड़ी जरूरत यह है कि इस आश्रम के दु:खों को दूर करने की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। एक सज्जन ने तो यहाँ तक कह दिया कि "परमात्मा-आत्मा के सम्बन्ध में तो आपने पर्याप्त लिख दिया है और अभी और लिखेंगे भी। परन्तु एक पुस्तक गृहस्थाश्रम को लक्ष्य में रखकर लिखिये।" और मैं यह समझने लगा कि इस समय एक नई स्मृति तैयार करनी चाहिए जो गृहस्थी मानव को इस उलझन में ही शान्ति का आभास करा सके। कुछ विचारशील विद्वान् परिवर्तित वातावरण का अध्ययन करके ऐसी एक स्मृति का निर्माण करें जो नई सन्तान के हृदय को भी छू सके और उसका ठीक पथ-प्रदर्शन भी कर सके। मैंने इस लघु-पुस्तिका में जो कुछ लिखा है, यह अपने अनुभव को वेद तथा शास्त्राज्ञा के साथ मिलाकर लिखा है। उद्देश्य यह है कि किसी प्रकार गृहस्थाश्रम सुख, आराम तथा शान्ति का केन्द्र बन सके।

अबके मुझे सिकन्दराबाद (आन्ध्र प्रदेश) के मारड़पल्ली के पर्वतीय स्थान पर श्री अमरचन्द शर्मा के शान्त-एकान्त बँगले में १८ दिन विश्राम करने का अवसर प्राप्त हो गया। भाषण, कथा-प्रवचन सब बन्द कर दिये और 'सुखी गृहस्थ' नामक पुस्तक लिखने लगा। शरीर की आयु ८४ वर्ष की होने लगी है। हाथों में कम्पन आ चुका है। काँपते हाथों से ही मैं लिखता चला गया। अक्षरों का टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना स्वाभाविक था। अत: प्रेस-कॉपी तैयार करना उचित समझा गया और इस कार्य में विजयकुमार जी तथा कुमारी हेमा B.A.B.Ed. ने सहायता की। इस लघु-पुस्तिका को मैंने आम बोलचाल की भाषा में लिखा है। साहित्यिक महानुभाव क्षमा करें, हिन्दी भाषा तो वही पनप पाएगी जो सर्वसाधारण के हृदय में उतर सके। यहाँ मैंने इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है।

—आनन्द स्वामी सरस्वती



अध्याय १

सुखी गृहस्थ

गृहस्थ और सुखी ? यह तो कुछ अनोखी बात प्रतीत होती है। हमारे नगर के एक वृद्ध महानुभाव (जिनका परिवार बहुत बड़ा था, पुत्र-पौत्र इत्यादि) भ्रमण करने जा रहे थे तो मार्ग में एक मित्र मिले। नमस्ते के उपरान्त पहली बात मित्र ने यह पूछी—'कहिये बाबा जी, घर में सब सुख-शान्ति है न ?' यह सुनते ही बाबा जी कहने लगे—'सुख-शान्ति किसी पुत्र-पौत्र-हीन के गृह में भले हो, मेरे यहाँ तो २५-३० का परिवार है। इतने परिवार में किसी के कान में पीड़ा, किसी के पेट में दर्द, किसी को कोई कष्ट, किसी को कोई दुःख। गृहस्थ में किसी का एक से झगड़ा, किसी का दूसरे से झगड़ा; एक का स्वभाव दूसरे से नहीं मिलता। इनके मुकद्दमे सुनने में ही कितना समय निकल जाता है। भला गृहस्थी में भी कभी सुख हो सकता है ?' आधुनिक काल में यही बात यथार्थ प्रतीत होती है, परन्तु गृहस्थ-आश्रम को मनु भगवान् ने 'ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ' लिखा है। जब यह आश्रम सबसे अच्छा और सबसे उत्तम है तो फिर इसमें दुःख क्यों, और इसे दुःखों का सागर क्यों कहा जाने लगा है ? क्या आरम्भ ही से इसे दुःखों का घर समझा जाता रहा है ?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। गृहस्थाश्रम तो लोक-परलोक दोनों को सुधारने का एक बहुत बड़ा साधन है। इस साधन को मानव ने अपने-अपने स्वार्थ, आलस्य-प्रमाद, अतिक्रान्त वासना-लोभ तथा मूर्खता से बिगाड़ रक्खा है। हम स्वयं ही जंजीरें घड़ते हैं, अपने हाथ से पाँव में बाँध लेते हैं और फिर चिल्लाने लगते हैं कि हम बांधे गए।

गृहस्थाश्रम का तो इसलिए निर्माण किया गया ताकि लम्बी जीवन-यात्रा में मानव थक न जाये, उकता न जाये। लम्बी यात्रा में साथी साथ हो तो यात्रा सरल बन जाती है। पुरुष तथा स्त्री इस प्रकार के साथी हैं, जिनमें आकर्षण है। पुरुष का स्त्री की ओर तथा स्त्री का पुरुष की ओर झुकाव सर्वदा स्वाभाविक है—

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां पुरुषेषु च।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते॥

—शार्ङ्गधर १।६॥

"स्त्रियों में पुरुषों का और पुरुषों में स्त्रियों का जो परस्पर स्वाभाविक स्नेह है उसी को काम कहते हैं।"

काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, इन पाँचों को ठीक मर्यादा में रखने का सुन्दर साधन गृहस्थ है। बाल्यकाल से मृत्यु-पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाले तो विरले ही होते हैं। सर्वसाधारण के कल्याण के लिए तो गृहस्थाश्रम ही श्रेयस्कर है। प्राचीन इतिहास बतलाता है कि ऋषि-मुनि गृहस्थाश्रम में रहकर सबका पथ-प्रदर्शन करते थे, और हमारे पूर्वज नारी-जाति का अत्यधिक मान करते थे। यहाँ तक वेद नें कह दिया कि नारी ही घर है। गृहिणी नहीं तो घर घर नहीं, सराय है।

देखिये, मनु भगवान् इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं—"हे गृहस्थो! स्त्री सन्तानोत्पत्ति के लिए बड़ी भाग्यवती है, घर की शोभा है। घरों में स्त्री मानो साक्षात् श्री है। स्त्रियों और श्री (लक्ष्मी) में कोई भेद नहीं॥ मनु० ९।२६॥ सन्तान का उत्पादन, उत्पन्न हुए का पालन-पोषण तथा प्रतिदिन की लोक-यात्रा (भोजन-वस्त्रादि का प्रबन्ध और आए-गए की सेवा) का स्त्री ही साक्षात् कारण है॥ ९।२७॥ सन्तान,

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

—मनु० ९।२६॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥

—मनु० ९।२७॥

धर्म के कार्य, सेवा, उच्च अवस्था का प्रेम तथा अपना और पितरों का जितना सुख है, ये सब स्त्री के अधीन हैं ।। ९ । २८ ।। धन के सँभालने और खर्च करने में, (घर, वस्त्र और बच्चों की) शुद्धि में, धर्म के कार्यों, अग्निहोत्र, सत्संग, स्वाध्यायादि में, रसोई के काम और घर के साधनोपसाधनों की देखभाल में इसे लगाएँ ।। मनु० ९ । ११ ।। स्त्री को योग्य (उचित) है कि सदा प्रसन्न रहे, और घर के कार्यों में दक्ष (निपुण और फुर्तीली) हो, घर को स्वच्छ और सजाकर रक्खे तथा खर्चने में हाथ खुला न रक्खे (मर्यादा से खर्च करे) ।। मनु० ५ । १५० ।।"

मनु भगवान गृहस्थाश्रम की कितनी प्रशंसा करते हैं, यह भी देख लेना चाहिए । मनु जी लिखते हैं कि—

"जैसे सब प्राणधारी वायु के सहारे से रहते हैं, वैसे सब आश्रम गृहस्थ का आश्रय लेकर रहते हैं ।" मनु० ३ । ७७ ।।

देवी शब्द ही कितना गौरव का शब्द है ! निस्सन्देह नारी-जाति मानव का माधुर्य है और उपनिषद् में तो यहाँ तक कहा गया है कि आत्मा को परमात्मा का पता बतलानेवाली 'उमा' ही थी । जर्मनी के महाकवि डेण्टे ने अपनी पुस्तक 'फ़ास्ट' (Faust) में लिखा है कि पुरुष

अपत्यं धर्मकार्याणि सुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्च सह ।।
—मनु० ९ । २८ ।।

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।
शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ।।
—मनु० ९ । ११ ।।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ।।
—मनु० ५ । १५० ।।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।।
—मनु० ३ । ७७ ।।

को पाप तथा दुःख के गढ़े से निकालनेवाली स्त्री ही थी।

केवल कवियों की यह कल्पना ही नहीं, इतिहास भी बतलाता है कि स्त्रियों ने हर रूप में पुरुषों का पथ-प्रदर्शन किया है। सिन्ध के सौवीर की रानी विदुला पर जब शत्रु ने आक्रमण किया तो विदुला का पुत्र संजय भयभीत होकर कोने में जा छिपा। माँ ने उसे पास बुलाकर कहा था—'तू कैसे मेरा बेटा है? मेरा है तो युद्ध में जाकर शत्रु का मुकाबला कर!' संजय ने कहा—'माँ, क्या तू मुझे मरा हुआ देखना चाहती है?' विदुला ने कहा, 'सुन बेटा! कोई माता अपने बच्चे की मृत्यु नहीं चाहती, परन्तु माँ यह भी सहन नहीं कर सकती कि उसका बेटा कायर बनकर जीवित रहे।'

यह सुनते ही संजय में नया जीवन संचार कर आया।

कुन्ती ने भगवान् कृष्ण के हाथ अपने बेटों को सन्देश भेजा था कि माताएँ अपने बेटों को जिस घड़ी के लिए जन्म देती हैं वह घड़ी अब आ पहुँची है, शत्रु का नाश कर दो।

राजपूताना के इतिहास का पन्ना-पन्ना नारियों के रक्त से रंगा हुआ है। कभी पत्नी के रूप में महामाया ने राजा यशवन्तसिंह को रणक्षेत्र में जूझ पड़ने की हिम्मत बँधाई, कभी सेविका के रूप में पन्ना धाय ने अपने बेटे का बलिदान देकर राजकुमार का जीवन बचाया। पुराने यूनान की माताएँ अपने बेटों को अपने हाथ से शस्त्र पहनाकर युद्ध में भेजती थीं और नंगी तलवार हाथ में देकर कहती थीं कि या तो इस तलवार के घाट शत्रु को उतार आना, या इसी तलवार के घाट आप उतर जाना। स्त्री का हृदय भगवान् ने कोमल-से-कोमल और कठोर-से-कठोर बनाया है। इसीलिए मनु ने स्त्रियों का विशेष मान करने की आज्ञा दी है।

'मनुस्मृति' के तीसरे अध्याय में तो सुखी तथा दुःखी गृहस्थ का सुन्दर वर्णन आता है। मनु जी लिखते हैं कि—

"पिता, भाई, पति और देवर जो (अपने कुल का) बहुत कल्याण चाहते हैं उन्हें चाहिए स्त्रियों का (कन्या, बहन, स्त्री, भौजाई इत्यादि) का मान करें और भूषित करें ॥५५॥ जिस कुल में स्त्री का मान होता

है, वहाँ देवता आनन्द मनाते हैं और जहाँ इनका मान नहीं होता वहाँ सब कर्म निष्फल हो जाते हैं ।।५६।। जहाँ स्त्रियाँ (अपमान या सत्य-प्रेम के अभाव से) शोकातुर रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ ये आदर-मान तथा पतियों के हार्दिक प्रेम से प्रसन्न-वदन रहती हैं, वह कुल सदा बढ़ता रहता है ।।५७।। जिस कुल में स्त्री से भर्ता और भर्ता से स्त्री सदा प्रसन्न रहते हैं उसी कुल में अटल कल्याण नित्य बना रहता है ।।६१।।

जब भारत में वैदिक संस्कृति यौवन पर थी, तब भारत के वे दिन सुनहरे दिन थे; तब गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का सरताज था। तब विवाह के सम्बन्ध में यह हीन भावना नहीं थी कि विवाह क्या है? उम्र-(आयुभर)-कैद और कमाई जुर्माना। परन्तु मिथ्या और अधूरे वैराग्य के कारण तथा वेद-मर्यादा के लोप हो जाने से आज गृहस्थाश्रम को दुःख-सागर कहा जाने लगा है। परन्तु वैदिक काल में गृहस्थाश्रम की बड़ी महिमा थी। गृहस्थ को ब्रह्म-प्राप्ति में बाधक नहीं, साधक समझा जाता था। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि जो ब्रह्म-विद्या के आचार्य थे, वे गृहस्थी थे। राजा जनक, राजा अश्वपति, योगी याज्ञवल्क्य, सब गृहस्थी थे। फिर गृहस्थ के सम्बन्ध में मिथ्या भावना कैसे जागी?

(१) सबसे पहला कारण है—यह हीन विचार कि जगत् मिथ्या है। चलो, मिथ्या ही समझ लिया था तो फिर मिथ्या का संग्रह नहीं करना था। दोनों बातें साथ-साथ क्यों रक्खी गईं?

(२) दूसरा कारण यह कि मानव-जीवन के उद्देश्य को ही भुला दिया गया। वाम-मार्ग ने यह प्रचार किया—खाओ, पियो और मौज उड़ाओ।

(३) तीसरा यह कि गृहस्थी को भोग-विलास का आश्रम समझ लिया गया।

(४) चौथा कारण यह कि धन ही को मुख्य स्थान दे दिया गया।

(५) पाँचवाँ कारण यह कि कन्या-जन्म पर शोक-दुःख मनाया जाने लगा। एक मित्र ने दूसरे मित्र से पूछा—'कहिये, क्या हाल है?' मित्र कहने लगा—'भाई, क्या पूछते हो! पचास हज़ार रुपये की डिग्री मेरे

ऊपर हो गई है।' फिर मित्र ने पूछा—'कैसे ?' उत्तर मिला, 'घर में कन्या पैदा हो गई है।'

(६) और सबसे बड़ा कारण है—दृष्टिकोण का बदल जाना।

अब तो केवल एक ही विचार सामने रहता है—धन-दौलत एकत्र करने का। किसी युवक से पूछिये—'इतना कष्ट उठाकर पठन-पाठन में क्यों लगे हो ?' उत्तर होगा—'अच्छी नौकरी मिलेगी। व्यापार में सहायता मिलेगी। किसी अच्छे परिवार की सुन्दर कन्या मिल सकेगी।'

किसी युवती से प्रश्न कीजिए—'स्वास्थ्य बिगाड़कर भी दिन-रात क्यों पढ़ रही हैं ?'

उत्तर उसी प्रकार का होगा कि धन कमाने के लिए किसी के अधीन न रहूँगी। जब मैं न्यूज़ीलैंड में था तो उधर के समाचारपत्रों में इस प्रश्न की बड़ी चर्चा थी और बहुधा युवतियों का उत्तर यह था कि अच्छा पति पाने के लिए, जिसके पास धन भी हो और प्यार भी हो, पढ़ना होता है।

भारत के कितने ही परिवारों से मैंने पूछा कि तुम लड़कियों को ईसाई-स्कूलों में क्यों पढ़ाते हो ? उत्तर यह मिला कि कॉन्वेंट में पढ़ी लड़की को बड़े घरोंवाले पसन्द करते हैं और अच्छे वर मिलते हैं। हिन्दुओं में विशेष रूप से धन की प्रधानता हो गई है। लड़कियोंवाले चिन्तित रहते हैं कि इतना धन व्यय करके लड़कियों को उच्च शिक्षा दिलाई, फिर भी विवाह के लिए लड़केवाले सहस्रों-लाखों की माँग करते हैं। पठित लड़कियाँ घर में चिन्ता का वातावरण देखती हैं तो वे भी चिन्तित हो जाती हैं। शुरू-शुरू में तो कितनी ही कन्याओं ने आत्म-हत्या कर ली थी और कितनों ने आयुपर्यन्त अविवाहित रहने का संकल्प कर लिया। परन्तु अब हवा में परिवर्तन आ रहा है या आ गया है; और वह यह कि सहशिक्षा तथा दूसरे कितने ही साधनों से लड़कियों ने Boy Friends और लड़कों ने Girl Friends बनाने शुरू कर दिये हैं। ऐसी मित्रता का प्रारम्भ होता ही काम-वासना से है। वह वास्तविक मित्रता और शुद्ध प्रेम तो होता नहीं और उद्देश्य भी वही होता है। इसलिए विवाह हो जाता है। जिस प्रेम का परिणाम विवाह हो,

उसे प्रेम न कहकर कामवासना ही कहा जा सकता है। या फिर धन के भय से विवाह होता है। ऐसे विवाह होने के पश्चात् कुछ लोग तो जैसे-तैसे निभाते चले जाते हैं और कुछ पछताने लगते हैं। काम-वासना का भूत सिर से उतरने लगता है तो पति-पत्नी को एक-दूसरे की बातें चुभने लगती हैं। पता नहीं यह विनोद है या वास्तविक बात, इसी प्रकार के पति-पत्नी झुँझलाए बैठे थे तो पत्नी कहने लगी—

'याद है जब आप मुझसे विवाह करने के लिए पागल हुए फिरते थे ?' पति ने उत्तर में कहा—'याद की बात कहती हो ? अब तो सिद्ध हो गया। यदि मैं पागल न होता तो तुझसे विवाह ही क्यों करता ?'

इस परिवर्तित अवस्था में गृहस्थ को दुःख का सागर कहा जाने लगा है। पश्चिमी सभ्यता ने भारत पर जादू कर रक्खा है। चूँकि पश्चिम में विवाह से पूर्व ही मित्र ढूँढने तथा मित्र बनाने का कार्य होता है और इधर भारत में भी कुछ अवस्था ऐसी ही हो रही है, अतः अब भारत के पठित नर-नारी भी इसकी नकल करने लगे हैं। भारत में प्रथा यह थी कि विवाह पहले होता था और मित्रता धीरे-धीरे बढ़ती थी जो मृत्यु-पर्यन्त बढ़ती चली जाती थी। पश्चिमवाले पहले मित्रता करते हैं और फिर विवाह करते हैं और उनकी मित्रता कम ही होती चली जाती है।

इंग्लैण्ड से एक मानसिक पत्रिका 'साइकॉलोजी' (Psychology) प्रकाशित होती है। उसमें यह लिखा था कि गत वर्ष इंग्लैण्ड तथा वेल्ज़ में अपनी पसन्द के तीन लाख पचास हज़ार विवाह हुए, जिनमें से एक लाख सोलह हज़ार थोड़े ही समय में टूट गए। मित्र बनाकर किए हुए विवाहों की यह दशा देखकर भी भारत शिक्षा नहीं लेता।

विवाह से पूर्व मित्र बनाने की प्रथा और भी बुरे परिणाम पैदा कर रही है। इसी 'साइकॉलोजी' में लिखा है कि पिछले एक वर्ष में इंग्लैण्ड तथा वेल्ज़ में ३७ हज़ार कुमारी लड़कियों के बच्चे हुए। क्या ऐसी बातें गृहस्थ में अधिक दुःख नहीं बढ़ा देंगी ? दुनिया बड़ी बदल गई है। भारत को भी बदलना चाहिए; परन्तु हानिकर बातों की नकल से तो दुःख की मात्रा बढ़ती ही जाएगी।

हाँ, वैदिक मर्यादा यह है कि माता-पिता भी कन्या तथा वर की भली प्रकार परीक्षा कर लें और वर तथा कन्या भी एक-दूसरे को देखकर अपनी सम्मति दें, तभी विवाह होना उचित है। हमारा इतिहास भी यही बतलाता है कि विवाह में मुख्य बात युवक-युवती की सहमति की है।



अध्याय २

विवाह के अधिकारी

जिस प्रकार मैडिकल कॉलेज, इंजीनियरिंग कॉलेज, लॉ कॉलेज इत्यादि में तृतीय व द्वितीय श्रेणी के छात्र-छात्राएँ प्रवेश नहीं पा सकते, उन्हें साइंस अथवा आर्ट का स्नातक होना होता है, इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में हरएक को प्रवेश पाने का अधिकार नहीं है। वेद इसके सम्बन्ध में यह आदेश देता है कि जिनके (१) शरीर में पराक्रम, (२) बुद्धि में गम्भीरता, (३) मन में प्रसन्नता, और (४) हृदय में विशालता है, वही गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं। यजुर्वेद का यह मन्त्र देखिये—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि।
ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः॥

—यजु० ३।४१॥

'हे गृहस्थो! मत डरो, मत काँपो। मैं जब पराक्रम को धारण करनेवालों के निकट आया हूँ तो स्वयं पराक्रम को धारण करके उदार हृदय और गम्भीर मेधा से युक्त होकर हर्ष-भरे मन के साथ तुम गृहस्थों के पास आया हूँ।'

इस वेदोपदेश के अनुसार गृहस्थी बनने के लिए चार गुणों का होना अनिवार्य है। शरीर पूरा, पुष्ट, बलवान्, सुडौल और फुर्तीला होना चाहिए। युवक हो या युवती, जिन्होंने अपना शरीर किसी भी कारण से बिगाड़ लिया है, जिनके मुख-मण्डल पर तेज नहीं, हवाइयाँ उड़ रही हैं, थोड़ी-सी गर्मी-सर्दी सहन नहीं होती, ऐसे लोगों का गृहस्थाश्रम में प्रवेश गृहस्थ को दुःखी बना देता है।

बुद्धि की गम्भीरता दूसरा गुण है। यदि कोई हर समय द्विविधा में पड़ा रहे, संशय में पड़े रहकर कोई निश्चय ही न कर सके, क्षण में रुष्ट और क्षण में तुष्ट हो जायें, चिड़चिड़ा स्वभाव हो, इत्यादि (ये बहुत बुरे चिह्न हैं), ऐसी बुद्धि के मालिक विवाह न करें तो गृहस्थाश्रम दुःख का केन्द्र न हो। सौम्य स्वभाव, शीतल मस्तिष्क, शान्त, निश्चलता, सहनशीलता आदि गुणोंवाले, गम्भीर बुद्धिवाले ही गृहस्थ को सुखी बनाएँगे।

मन की प्रसन्नता तीसरा गुण है। सदा प्रसन्न रहनेवालों के कष्ट-क्लेश अपने-आप दूर होते रहते हैं और जीना भी उसी का है जो हँसकर जिये। चिन्तित रहनेवाले तो गृहस्थ को नरक बना देते हैं। ऐसे लोग निराशावादी स्वभाववाले और बीमार रहते हैं।

हृदय में विशालता चौथा गुण है जो गृहस्थों के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि गृहस्थी ने केवल सम्बन्धियों और मित्रों के साथ ही उदारता से व्यवहार करना नहीं होता, अपितु शेष तीन आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) वालों की भी पालना करनी होती है। हृदय विशाल नहीं होगा तो पति-पत्नी, पिता-पुत्र, सास-बहू ज़रा-ज़रा-सी बात पर घर को युद्ध-स्थल बना देंगे।

जिस व्यक्ति में ये चार गुण होंगे, धन स्वयमेव उसके पास आ जाएगा। इसीलिए इस वेद-मन्त्र में धन का वर्णन नहीं आया जबकि आज के युग में ये चार बातें न देखकर केवल मुखड़ा और धन ही देखा जा रहा है।

अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों का अवलोकन कीजिए—

ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः सुमेधा अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमध्वं मा बिभीत मत्॥
—अथर्व० ७।६०।१॥

पराक्रम को धारण करके, ऐश्वर्य और भलाई का प्रेमी बनकर, उत्तम मेधा और उदार मन से युक्त होकर, आदर-मान करता हुआ मैं कभी प्रतिकूल न होनेवाली मित्र के योग्य दृष्टि से गृहस्थों में

प्रवेश करता हूँ। हे गृहस्थो! मेरे साथ आनन्द मनाओ, मुझसे मत डरो ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥
अथर्व० ७। ६०। ३॥

ये गृहस्थ जो सुखों के उत्पन्न करनेवाले हैं, पराक्रम से और शक्ति से पूर्ण हैं; उत्तम आहार से और दूध से पूर्ण हैं; प्रत्येक उत्तम वस्तु से पूर्ण होकर स्थित हैं; वे हमें आते हुओं को स्वीकार करें ॥ २ ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अतृष्या अक्षुध्या स्त गृहा मास्मद् बिभीतन ॥
अथर्व० ७। ६०। ७॥

हे गृहस्थो! तुम जो मीठी और सच्ची वाणियोंवाले, सौभाग्य-वाले, अन्न-जलों के मालिक, हँसी से आनन्द मनाते हुए, भूख और प्यास का अभाव करनेवाले हो, हमसे मत डरो ॥ ३ ॥

कितनी सुन्दर भावनाएँ इन मन्त्रों के अन्दर हैं! ऐसे गुणोंवाले गृहस्थी हों तो फिर दुःख कहाँ? इन मन्त्रों में गृहस्थ-प्रवेश का अधिकार उसको दिया गया है जो पराक्रमी, उदार-हृदय, गम्भीर-बुद्धि, ऐश्वर्य तथा भलाई का प्रेमी, आत्म-विश्वासी, अपने-आप पर भरोसा रखने-वाला, मन से कभी दीन-हीन न होनेवाला, गृहस्थियों को आदर की दृष्टि से देखनेवाला, गृहस्थाश्रम का भार उठाने के योग्य हो; सार्व-जनिक कार्यों में प्रेम रखनेवाला हो; दूध-अन्न के भण्डार रखनेवाला हो; दुर्भिक्ष-पीड़ितों का सहायक हो और सबसे बढ़कर हँसमुख, सदा प्रसन्न रहे और दूसरों को भी प्रसन्न रक्खे।

महर्षि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में विवाह विषय का संक्षेप में वर्णन किया है और 'संस्कारविधि' में विस्तार से किया है। इसमें जिन दो मन्त्रों की व्याख्या महाराज ने की है, वे ये हैं—

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ।।
ऋ० १० । ८५ । ३६ ।।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।।
ऋ० १० । ८५ । ४२ ।।

महर्षि ने इन मन्त्रों का भावार्थ यह किया है—"हे स्त्री ! मैं सौभाग्य अर्थात् गृहस्थाश्रम में सुख-भोग के लिए तेरा हस्त ग्रहण करता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो काम तुझको अप्रिय होगा, उसको मैं कभी न करूँगा। ऐसे ही स्त्री भी पुरुष से कहे कि जो व्यवहार आपको अप्रिय होगा उसको मैं भी कभी न करूँगी। और हम दोनों व्यभिचारादि दोष-रहित होके वृद्धावस्था-पर्यन्त परस्पर आनन्द के व्यवहारों को करेंगे। हमारी इस प्रतिज्ञा को सब लोग सत्य जानें कि इससे उलटा काम कभी न किया जायेगा। जो ऐश्वर्यवान् सब जीवों के पाप-पुण्य के फलों को यथावत् देनेवाला, सब जगत् का उत्पन्न करने और सब ऐश्वर्य का देनेवाला परमेश्वर है, वही हमारे दोनों के बीच में साक्षी है; तथा परमेश्वर और विद्वानों ने मुझको तेरे लिए और तुझको मेरे लिए दिया है कि हम दोनों परस्पर प्रीति करेंगे तथा उद्योगी होकर घर का काम अच्छी तरह से करेंगे और मिथ्या भाषणादि से बचकर सदा धर्म ही में वर्तेंगे। सब जगत् का उपकार करने के लिए सत्य विद्या का प्रचार करेंगे और धर्म से पुत्रों को उत्पन्न करके उनको सुशिक्षित करेंगे। यह प्रतिज्ञा हम ईश्वर की साक्षी से करते हैं कि इन नियमों का ठीक-ठीक पालन करेंगे। दूसरी स्त्री और दूसरे पुरुष से मन में भी व्यभिचारादि नहीं करेंगे। हे विद्वान् लोगो ! तुम भी हमारे साक्षी रहो कि हम दोनों गृहस्थाश्रम के लिए विवाह करते हैं। फिर स्त्री कहे कि मैं इस पति को छोड़के मन, वचन और कर्म से भी दूसरे पुरुष को पति न मानूंगी तथा पुरुष भी प्रतिज्ञा करे कि मैं इसके सिवाय किसी स्त्री को अपने मन, कर्म और वचन से कभी न चाहूंगा।"

विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए भगवान् की आज्ञा है कि "तुम दोनों गृहस्थाश्रम के शुभ व्यवहारों में रहो अर्थात् विरोध करके अलग कभी मत हो, और व्यभिचार भी किसी प्रकार का मत करो। ऋतुगामित्व से सन्तानों की उत्पत्ति, उनका पालन और सुशिक्षा इत्यादि श्रेष्ठ व्यवहारों से सौ या सवा सौ वर्ष-पर्यन्त आयु को सुख से भोगो। अपने घर में आनन्दित होकर पुत्र-पौत्रों के साथ नित्य धर्मपूर्वक क्रीड़ा करो।"

इस बिगड़ी दुनिया में भी गृहस्थ को सुखपूर्वक निभाने के कितने सुन्दर आदेश वेद देता है! फिर पता नहीं इस आश्रम को दुःख-सागर क्यों कहा जाता है?

'संस्कार-विधि' में स्वामी दयानन्द जी गृहस्थाश्रम-संस्कार के आरम्भ में लिखते हैं—"गृहस्थाश्रम-संस्कार उसको कहते हैं कि जो ऐहिक (इस लोक, वर्तमान जीवन) और पारलौकिक सुख-प्राप्ति के लिए विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन, मन, धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानोत्पत्ति करना। इसी का नाम गृहस्थाश्रम-संस्कार है।"

गृहस्थाश्रम प्रकरण के अन्त में महर्षि बतलाते हैं कि पति-पत्नी कैसे रहें—"हम एक-दूसरे से कभी विद्वेष-विरोध न करें, किन्तु सदा मित्र-भाव और एक-दूसरे के साथ सत्य प्रेम से वर्तकर सर्व गृहस्थों के सद्व्यवहारों को बढ़ाते हुए सदा आनन्द में बढ़ते जाएँ। जिस परमात्मा का यह ओम् नाम है, उसकी कृपा और अपने कर्मयुक्त पुरुषार्थ से हमारे शरीर, मन और आत्मा के विविध दुःख जो कि अपने को दूसरे से होता है, नष्ट हो जाएँ और हम लोग प्रीति से एक-दूसरे के साथ वर्तके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि में सफल होके सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सबको आनन्द में रखें।"

शास्त्र और ऋषि तो गृहस्थ को सुख-आनन्द देनेवाला बतलाते हैं, परन्तु आधुनिक काल में इसके उलट क्यों दिखलाई देता है, इसका विवेचन करना चाहिए।

महर्षि नें 'संस्कार-विधि' में बतलाया है कि विवाह से पहले वर-कन्या दोनों की परीक्षा होनी चाहिए। यह नहीं कि एक ही दृष्टि में लैला-मजनू बन गए। ऐसे लैला-मजनू बहुधा दुःखी होते देखे गए हैं। 'संस्कार-विधि' में 'आश्वलायन गृह्यसूत्र' के आधार पर लिखा है कि—

"परीक्षा—अब वर-वधू एक-दूसरे के गुण, कर्म और स्वभाव की परीक्षा इस प्रकार करें—दोनों का तुल्य शील, समान बुद्धि, समान आचार, समान रूप आदि गुण, अहिंसकता, सत्य, मधुर भाषण, कृतज्ञता, दयालुता; अहंकार-मत्सर-ईर्ष्या-काम-क्रोध-शून्यता, निर्लोभता, देश का सुधार, विद्या-ग्रहण, सत्योपदेश करने में निर्भयता, उत्साह, कपट, चोरी, मद्य-मांसादि दोषों का त्याग, गृह-कार्यों में अति चतुरता हो।" इतनी बातों की परीक्षा करने से गुण, कर्म, स्वभाव का पूरा ज्ञान हो सकता है। परीक्षा के न होने के कारण गृहस्थाश्रम दुःखी हो रहा है।



अध्याय ३

गृहस्थ-दुःख के मूल कारण

बड़ा भारी भयंकर तूफ़ान आ चुका है, जिसमें प्राचीन मर्यादाएँ ऐसे उड़ रही हैं जैसे आँधी-झक्खड़ से तिनके उड़ जाते हैं। तूफ़ान का आरम्भ एक हज़ार वर्ष पूर्व हुआ था, जब विदेशियों ने भारत पर आक्रमण किया। भारत जगत् को मिथ्या समझ बैठा था। आक्रमण का मुक़ाबला तो हुआ परन्तु वेदिली से। तब बार-बार आक्रमण होने लगे। कभी सोमनाथ लूटा गया, कभी भारत की नारियाँ विदेश में जाकर नीलाम हुईं, विदेशियों के अत्याचार से नारियों की रक्षा-हेतु बाल्यकाल का विवाह जारी किया गया। ग़ज़नवी, तैमूर, नादिर, चंगेज़ खाँ की लूट और कत्ले-आम निरन्तर जारी रहे। विदेशियों के प्रभाव से बचने के लिए छूतछात और अनेक वेदविरुद्ध बातें प्रचलित की गईं। एक हज़ार वर्ष की दासता ने भारत के चरित्र का हुलिया ही बदल डाला। यदि आज से पाँच हज़ार वर्ष पूर्व का कोई भारत-वासी यहाँ आ जाए तो वह समझेगा कि मैं स्वर्ग से भी पवित्र भारत में नहीं, अपितु किसी नरक में आ गया हूँ। इस भयंकर तूफ़ान ने जो हानि गत दो सौ वर्षों में पहुँचाई है, उससे आर्य संस्कृति, भारतीय सभ्यता, सच्ची मानवता के पेड़ उखड़ गए हैं, पत्ते झड़ गए हैं; न वह भाषा रही है, न वह वेश रहा है, न वह पहला-सा खान-पान रहा है, न शिक्षा रही है, और न यज्ञोपवीत रह गया है। माता की जगह मम्मी और पिता के स्थान में डैडी आ गया है। पतिव्रत-धर्म और पितृ-भक्ति क़ा मखौल उड़ाया जाता है। सत्संग, स्वाध्याय, सन्ध्या को अस्वाभाविक (Unnatural) कहा जाने लगा है। भूख तथा काम-वासना की तृप्ति को ही आवश्यक तथा स्वाभाविक समझा जाने लगा है।

विवाह को ही ले लीजिये—यह एक अत्यन्त पवित्र, लोक-परलोक सुधारनेवाली और पारिवारिक जीवन में मधुरता पैदा करनेवाली संस्था थी; सुख तथा आनन्द की मात्रा बढ़ानेवाला साधन था। अब भी कितने ही परिवार इसका आस्वाद लेते और प्राचीन ऋषियों की इस प्रणाली के गुण गाते हैं, परन्तु पश्चिमी हवाओं ने इसका गौरव कम कर दिया है। अब तो पश्चिमी सभ्यता को अपनानेवाले विवाह को एक प्रकार का व्यापार समझते हैं। विवाह के बहाने धन कमाओ, साथ ही कामवासना की भी तृप्ति करो। परिणाम क्या हो रहा है ?

(१) पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए भी बिना भारी धन दिये वर नहीं मिलते।

(२) चूंकि धन को मुख्य पदार्थ समझा जाने लगा है, इसलिए लड़कियाँ भी धन कमाने में अधिक ध्यान देने लगी हैं। अधिक धन की आवश्यकता के कारण लड़कियों को भिन्न-भिन्न कार्यालयों में भटकना पड़ता है। नौकरी के लिए फिसलने पर मजबूर हो जाने की दुर्घटनाएँ भी सुनी जाने लगी हैं।

(३) इस अवस्था को देखकर सहशिक्षा तथा अधिक मिलन और सिनेमा इत्यादि के प्रभाव से अब बॉय फ्रेंड (Boy Friend) तथा गर्ल-फ्रेंड (Girl Friend) बनाने की ओर रुचि बढ़ने लगी है।

(४) मित्र बनाने में एक ही बात देखी जाती है और वह है सौन्दर्य का आकर्षण और साथ ही बिना धन व्यय किए विवाह। शेष और कोई बात देखी नहीं जाती, न कुल, न स्वभाव, न गुण, न कर्म, न चरित्र। ऐसे विवाह अन्त में दुःख ही के कारण होते हैं। स्वामी दयानन्द ने शास्त्रों के प्रमाण से 'संस्कार-विधि' में लिखा है कि—

"वधू और वर की आयु, कुल, वास्तव्य-स्थान, शरीर, स्वभाव की परीक्षा अवश्य करें अर्थात् दोनों सज्ञान और विवाह की इच्छा करनेवाले हों। स्त्री की आयु से वर की आयु न्यून-से-न्यून ड्योढ़ी और अधिक-से-अधिक दूनी होवे। परस्पर कुल की परीक्षा भी करनी चाहिए।" और मनु जी ने तो कितनी प्रबल बात 'मनुस्मृति' के अध्याय नौ में कह दी है कि "चाहे लड़का-लड़की मरण-पर्यन्त कुंवारे रहें परन्तु

असदृश अर्थात् परस्पर-विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिए।" और आजकल गुण, कर्म, स्वभाव न देखकर केवल धन और रूप ही देखा जाता है। इसीलिए गृहस्थाश्रम में दुःख अधिक प्रतीत होने लगते हैं। वेद तो यह कह रहे हैं कि गृहस्थ सुख, आनन्द, परोपकार, लोक-परलोक सुधारने के लिए है। मानव-जीवन-यात्रा लम्बी है, दो साथी मिल जाएँ तो यात्रा सरलता से हो सकती है। और अब इस आश्रम का उद्देश्य ही कुछ और हो गया है। आज के गृहस्थों के दुःख का बुनियादी कारण गुण, कर्म, स्वभाव देखे बिना विवाह करना है।

दुःख का दूसरा कारण—पिछले एक हज़ार वर्ष में वैदिक मर्यादा न रहने के कारण भारत में स्त्रियों के प्रति घृणा का भाव आ गया। नारियों को पूरे बल के साथ दबाए रक्खा गया। परन्तु यह अवस्था सदा तो रह नहीं सकती थी। दिन पलटे, नारी ने आँखें खोलीं और शास्त्राज्ञानुसार स्त्री पुरुष के समक्ष खड़ी हो गई। विवाह-संस्कार में स्पष्ट आज्ञा है कि पति-पत्नी इस तरह मिलकर रहें जैसे दो जल मिलकर एक हो जाते हैं। संस्कार में जो सप्तपदी-क्रिया है, उसमें पत्नी वर के साथ सात क़दम चलती है। सातवें पग पर पति पत्नी को 'सखे' शब्द से सम्बोधित करता है अर्थात् अब दोनों मित्र तथा सखा बन गए हैं। अतः गृहस्थाश्रम में दोनों का परस्पर व्यवहार मित्रों जैसा होना चाहिए।

लड़की-लड़के में मित्रता का आरम्भ यहाँ से होता है; पढ़ते हुए कॉलेज या सिनेमा में नहीं होता। गृहस्थ में प्रवेश करने पर जब पत्नी को ऐसा व्यवहार नहीं मिलता तो द्वेष तथा दुःख की आग सुलग पड़ती है। अपने माता, पिता, भ्राता तथा सारे सम्बन्धियों से पृथक् होकर नारी इसीलिए पति-गृह में आती है कि उसे एक मित्र मिल गया है। जब वह मित्रता के स्थान पर क्रूरता और दुर्व्यवहार देखती है तो उदास रहने लगती है।

दुःख का तीसरा कारण स्वार्थ है जो गृहस्थाश्रम को निस्सन्देह नरक बना देता है। चूंकि यह युग ही अपना प्रभुत्व बढ़ाने, अपनी 'मैं' को

ऊँचा करने का है—'मुझे सुख मिलना चाहिए; मुझे किसी के अधीन न होना पड़े; दूसरे सुखी हों या दुःखी, मुझे क्या!' यह निकृष्ट स्वार्थ की भावना गृहस्थाश्रम को दुःखी बना रही है। Individualism अर्थात् व्यक्ति या व्यष्टि की अपनी स्वार्थ-सिद्धि ने देश को, जाति को, परिवारों को, सबको दुःखी कर रक्खा है। दुःखी सास-बहू, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई के झगड़ों की तह में निकृष्ट स्वार्थ ही छिपा बैठा दिखाई देता है। एक तो सरकारी कानूनों ने साँझे परिवारों को सर्वथा बिखेर दिया है, दूसरे, स्वार्थ ने रही-सही कसर निकाल दी है। हाँ, अभी कुछ सात्त्विक वृत्ति के परिवार मिल-जुलकर रहते दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु ऐसे परिवारों में फूट डालने का यत्न करनेवाले 'सज्जन' निरन्तर इस टोह में रहते हैं कि इनमें फूट कब पड़ती है।

स्वार्थ दो प्रकार का है—एक तो शरीर को सुख पहुँचाने से सम्बन्ध रखता है। इसे तो थोड़ा-बहुत छोड़ा भी जा सकता है और छोड़ा भी जाता है, परन्तु जो दूसरे प्रकार का स्वार्थ है वह मन से सम्बन्ध रखता है। यह मानसिक स्वार्थ कलह-क्लेश की सृष्टि रचा देता है। पिता कहता है, सत्सङ्ग में चलो। सन्तान कहती है, मन नहीं करता, मन पिक्चर देखने के लिए कह रहा है। पिता कहता है 'लव'-पिक्चर न देखा करो। सन्तान कहती है मन उसी पिक्चर में लगता है। पिता कहता है, पढ़-लिख लो। सन्तान कहती है, मन नहीं करता। अच्छा, विवाह कर लो। नहीं, मन ही नहीं करता। पत्नी कहती है, मन मैके जाने के लिए उतावला हो रहा है। पति कहता है, जाने दो, मेरा मन नहीं मानता।

परन्तु गृहस्थ में सुख बढ़ाने के लिए मन को तो मारना ही पड़ता है। यदि परिवार में हर कोई अपनी मनमानी ही करने लगे तो वह घर क्या बन जाएगा? स्वार्थ-परायण लोगों की जब इच्छा-पूर्ति न हो तो फिर क्रोध की ज्वाला भड़क उठती है और ऐसा क्रोध परिवार के संगठन को, सुन्दरता को और सुख को भस्म कर देता है। परिवार क्या, इस स्वार्थ ने आज देखो दुनिया को कितना दुःखी कर रक्खा है! हर स्थान, हर देश में यह जो फूट, युद्ध, गृह-युद्ध तथा वैमनस्य दिखाई

देता है, यह स्वार्थ के कारण ही से है। चीन देश में एक पार्टी दूसरे का नाश करने पर तुली हुई है। इस स्वार्थ ही ने अमरीका के देवता स्व० कैनेडी का वध करा दिया। इण्डोनेशिया में स्वार्थ के भूत ही का नाच हो रहा है। भारत के टुकड़े स्वार्थ ही ने करा डाले। स्वतन्त्रता के पश्चात् यह स्वार्थ और प्रबल हो गया। नन्हे-से पंजाब के पुनः टुकड़े हो गये। कम्युनिस्ट परस्पर लड़ रहे हैं। अकाली एक-दूसरे का बल तोड़ने में लगे हैं। कांग्रेस की फूट क्या-क्या रंग दिखला रही है! आर्यसमाज में फूट, हिन्दुओं में फूट, मुसलमानों में फूट और कहाँ फूट नहीं! यह सब स्वार्थ की कृपा से हो रहा है। परिवारों, सोसाइ-टियों, मन्दिरों, सबको स्वार्थ ने घेर रक्खा है। यह जो खाद्य पदार्थों में मिलावट और रिश्वत चल रही है, यह भी तो स्वार्थ के बल-बूते पर ही चलती है। भारत में आज महँगाई दूर हो जाये, यदि स्वार्थ को बीच में से निकाल दिया जायें।

सारी दुनिया के दुःख का और परिवारों के दुःख का यह एक बहुत बड़ा कारण है।

दुःख का चौथा कारण है 'सहनशीलता का अभाव'। गृहस्थाश्रम में परिवार में प्रीति, संगठन और प्रेम बनाए रखने के लिए सहनशीलता अत्यन्त आवश्यक है। बहुतेरे झगड़े इसीलिए शुरू हो जाते हैं कि परिवार में एक-दूसरे की बात सहन नहीं की जाती। 'महाभारत' का युद्ध इसी कारण से हुआ। यदि दुर्योधन द्रौपदी का उपालम्भ सहन कर जाता तो भारत का सर्वनाश करनेवाला यह युद्ध न होता। परिवारों में प्यार बनाए रखने के लिए किसी को चुभनेवाली बात कहनी ही नहीं चाहिए; परन्तु सारे देवता तो बन नहीं सकते। कई लोग ऐसे स्वभाव के होते हैं जो दूसरे को चिढ़ाकर ही प्रसन्न होते हैं, ऐसे लोगों के इस स्वभाव को बदलने का ढंग यह नहीं कि उनको ईंट का उत्तर पत्थर में दिया जाये, अपितु ढंग यह है कि उनकी कड़वी बात को सहन करके प्रकट कर दिया जाये कि तुम्हारा यह तीर यहाँ घाव नहीं कर सकता। एक बार, दो बार, कब तक कड़वे वचन के तीर चलाये जाएँगे! इसका अन्त होगा ही। सुन्दर घटना है एक—

नव-विवाहिता बहू घर में आई तो सास ने खुशियाँ मनाईं, परन्तु थोड़े समय के पश्चात् उपालम्भ शुरू हो गए—'तेरी माँ ने तुझे बी० ए० तो पास करा दिया और घर सँभालने की कोई शिक्षा ही नहीं दी। कितनी मूर्ख है तू! सूर्य सिर पर आ जाता है और तू सोई-सोई पड़ी रहती है।' ऐसे ताने सुनकर बहू भी चुप न रह सकी; वह भी कॉन्वेण्ट की पढ़ी हुई थी। अब तो घर में कलह-क्लेश बढ़ने लगा। पति बेचारे की शामत आ गई। पत्नी की बात सुने तो माँ कहती है—'इस जादूगरनी ने तेरे ऊपर जादू कर रक्खा है; उसी का तू पक्ष लेता है।' माँ की सुने तो पत्नी कहती है—'मुझे क्यों ब्याह लाए थे? मुझे नदी में फेंक आओ।' एक दिन एक बहुत वृद्ध साधु उधर आ निकले। पुरुष उनके सामने रोया। महात्मा ने कहा—'घबराना नहीं, सब ठीक हो जाएगा।' उनकी पत्नी को निकट बिठलाकर महात्मा ने उसे उपदेश दिया—'सुनो बेटी! माता-पिता से जुदा होकर इस परिवार में आई हो; अब ऐसा व्यवहार करो कि परिवार में सुख-शान्ति बनी रहे। जब भी सास उपालम्भ दे या कठोर वचन कहे तो शान्त रहो और जब सास का क्रोध थम जाया करे तो सास रानी के पाँव पकड़कर कहा करो, अब मेरी माता आप हैं, अब मैं आप ही की बच्ची हूँ। आपने ही मुझे समझाना और सन्मार्ग दिखलाना है। आप ही के चरणों में रहूँगी। जैसी-कैसी हूँ, आप ही की हूँ। अब निभा लीजिए।' बहू रानी ने हृदय से इसे स्वीकार कर लिया और सास रानी के कठोर वचनों की आग पर अपनी नम्रता तथा मीठी वाणी का जल डालने लगी। कितना ही समय व्यतीत हो गया परन्तु सास के स्वभाव में वैसी ही गर्मी रही। एक दिन सास ने गालियों के अंगारे फेंकने शुरू कर दिये। बहू बैठी शान्त होकर सुनती रही। तब आसपास की स्त्रियाँ एकत्र हो गईं। सास का रिकॉर्ड चलना शुरू हो गया तो एक स्त्री कहने लगी—'जब तुम्हारी बहू कोई उत्तर नहीं देती, तब तुम भी चुप क्यों नहीं होतीं?' तत्काल बहू बोल उठी—'आप मेरी माता जी को कुछ न कहें, वह तो मातृ-प्रेम-वश मुझे शिक्षा देती हैं; यह हमारा अपना मुआमला है, आप इसमें हस्तक्षेप न करें मौसी जी!' जब सास ने बहू की बात सुनी तो

सास का हृदय बदल गया और फिर उस परिवार में किसी प्रकार का भी झगड़ा नहीं हुआ। सहनशीलता जादू है जादू ! जिन परिवारों में यह गुण है वहाँ दुःख नहीं आ सकता।

दुःख का पाँचवाँ कारण है, 'अति कामवासना'। गृहस्थाश्रम स्वाभाविक कामवासना को मर्यादा में रखने का एक उत्तम साधन है। विवाह का मतलब यह नहीं है कि अपना तथा पत्नी का सर्वनाश करने का परमिट मिल गया है। जो पति-पत्नी संयम से रहते हैं, उनका प्रेम दिनोंदिन बढ़ता जाता है और जो अपनी इस वासना को तृप्त करने में अति करते हैं, उनमें चिड़चिड़ापन, क्रोध, रोग तथा मनसुटाव उभरने लगते हैं। जो पति-पत्नी ऋतुगामी और शास्त्र-आदेश के अनुसार चलते हैं उनमें केवल प्रेम ही नहीं, आदर-मान भी बढ़ता है। वे हर समय रोगों के शिकार नहीं बने रहते। आधुनिक काल में परिवार-नियोजन की आड़ में वीर्यनाश करने के कितने ही ढंग निकल आए हैं। राज्य की ओर से जितना धन इन हानिकर साधनों के प्रचार में नष्ट किया जा रहा है, उतना धन यदि ब्रह्मचर्य के उत्तम विचार के प्रचार में व्यय किया जाये तो सन्तान भी कम हो और जनता का स्वास्थ्य भी सुधरे। शारीरिक विज्ञान के विद्वान् बतलाते हैं कि जो अन्न इत्यादि मानव खाता है, शरीर में जाकर वह क्रमशः रस, रक्त, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओज का रूप धारण करता है। वीर्य मानव के स्वस्थ जीवन और मानसिक तथा आत्मिक बल के लिए बड़ा उपयोगी है। दुनियादारी में इसका प्रयोग सोच-विचारकर समयानुकूल और सन्तानोत्पत्ति के शुद्ध विचार से करना चाहिए।

पति-पत्नी के एक बार के सहवास से लगभग ३० बिन्दु वीर्य का व्यय हो जाता है और वीर्य का एक बिन्दु बनने के लिए रक्त के न्यून-से-न्यून ८० बिन्दु काम आते हैं। अब विचार कर लीजिए कि एक बार के संगम से लगभग १६०० रक्त-बिन्दु नष्ट हो जाते हैं। और जब बार-बार इतना रक्त नष्ट किया जाएगा तो मस्तिष्क तथा हृदय और यकृत पर इसका बुरा प्रभाव पड़े बिना रह नहीं सकता। नेत्र-ज्योति भी कम होने लगती है। दिल धड़कने लगता है। नाना प्रकार

की निर्बलताएँ आ जाती हैं। परिवार में क्रोध, उदासी तथा रोग छा जाते हैं। अतः सँभलो ! क्षण-मात्र के सुख के लिए अपना कीमती खज़ाना बरबाद न करो ! इसका प्रयोजन यह नहीं कि मानव इन्द्रिय-सुख से वंचित हो जाए। मर्यादा में रहकर इन्द्रिय-सुख लिया जाएगा तो परस्पर सुख की प्रतीति बहुत अधिक होगी। आयुर्वेद-शास्त्र इस सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान देता है, उसका अवलोकन लाभ देगा। आजकल के नये ढंग कुछ समय के लिए उपयुक्त हों तो हों, परन्तु लम्बे काल में शारीरिक-मानसिक रोगों को बढ़ानेवाले तथा राजनैतिक हानि पहुँचानेवाले होंगे। यही नहीं, अति कामवासना मानव को मनुष्य-जीवन के वास्तविक उद्देश्य 'ब्रह्म-प्राप्ति' से भी वंचित कर देती है। 'महाभारत' के मोक्षपर्व में लिखा है कि—

कामबन्धनमेवैकं नान्यदस्तीह बन्धनम् ।
कामबन्धनमुक्तो हि ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

कामवासना ही बन्धन है, अन्य यहाँ बन्धन नहीं है। कामवासना-रूप बन्धन से छटा हुआ ब्रह्म-प्राप्ति में समर्थ होता है।

अप्राकृतिक साधनों से सन्तान तो रुक सकती है, परन्तु शरीर का अनमोल रत्न तो नष्ट होने से रुक नहीं सकता। आयुर्वेद ने बतलाया है—

मरणं वीर्यपातेन, जीवनं वीर्यधारणात् ।।

वीर्य की रक्षा जीवन और वीर्य का नाश जीवन का नाश है।

तब वह कौन बुद्धिमान् है जो कामवासना के अधीन होकर अपनें पाँवों पर आप कुल्हाड़ा चलाएगा !

परन्तु आज ये कुल्हाड़े बुरी तरह चलाए जा रहे हैं और भारत की राज्य-सत्ता इसमें पूरा सहयोग दे रही है।

ये चिह्न विनाश ही के हैं। शास्त्रों ने जो मर्यादा बाँध रक्खी है वही मर्यादा उपयुक्त है। 'मनुस्मृति' के तीसरे अध्याय के श्लोक इस सम्बन्ध में ठीक पथ-प्रदर्शन करते हैं। इन श्लोकों में बतलाया है कि पुरुष ऋतुकाल में स्त्री के पास जाए और सदा अपनी स्त्री का ही प्रेमी हो। पर्व-दिनों (अमावास्या, पूर्णमासी, अष्टमी, चतुर्दशी) को छोड़ दे और रति की कामवासना से स्त्रीव्रत रहे। फिर यह भी बतलाया कि

कौन-सी रात्रियाँ कन्या और कौन-सी रात्रियाँ पुत्र उत्पन्न करने में सहायक बनती हैं, और वह कौन-सा समय है जब सन्तान नहीं हो सकती। 'मनुस्मृति' की इन बातों की पुष्टि पश्चिमी विद्वान् भी करते हैं। 'संस्कार-चन्द्रिका में यह उल्लेख है कि डॉ० ट्राल ने अपने अनुभव से लिखा है कि पन्द्रह वर्ष हुए, मैंने यह नियम प्रकाशित किया था जिसकी परीक्षा सहस्रों मनुष्यों ने की और सफल हुए। हाँ, थोड़े असफल भी हुए। वह नियम यह है कि रज:बन्द हो जाने के पश्चात् १२ दिन तक यदि पति-पत्नी अलग रहें तो फिर गर्भस्थिति नहीं होती। 'मनुस्मृति' के उपदेश के अनुसार चला जाए तो एक मास में एक ही रात्रि रह जाती है, क्योंकि पहली चार रात्रियाँ तो त्याज्य हैं ही, ग्यारहवीं तथा तेरहवीं भी त्याज्य कही गई हैं; ये छः हुईं। इनसे अतिरिक्त आठ और छोड़नी कही हैं। ये कुल १४ हुईं; सो १६ में से दो ही बाकी रहीं। पुत्र-अभिलाषी हो तो युग्म रात्रि ही को प्रयोग करना होगा अर्थात् एक ऋतुकाल (एक महीना) में एक ही बार पत्नी के पास जाना होगा। दुःख की बात यह है कि अपने ऋषियों के ग्रन्थों को हम देखते नहीं और ऊटपटाँग बातों में फँसकर दुःख बढ़ा लेते हैं।



अध्याय ४

सुखी गृहस्थ के साधन

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो सुख, चैन, शान्ति न चाहता हो। गृहस्थ में प्रवेश करने का पहला उद्देश्य ही यही समझा जाता है कि सुख का जीवन व्यतीत हो। विवाह-संस्कार में एक मन्त्र वधू की ओर से पढ़ा जाता है कि मैं पतिदेव के यहाँ जा रही हूँ, ताकि मेरा जीवन कल्याणकारी और सुखी हो; परन्तु इस शुभ इच्छा-पूर्ति के लिए कुछ साधना करनी होती है और उसी साधना का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

पहला साधन 'मानवता'—मानवता यदि मानव में हो तो वह किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करेगा और परिवार में रहते हुए तो मानवता के साथ रक्त-सम्बन्ध होता है; तब हृदय में प्यार, मुहब्बत, स्नेह, उपकार के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। मानवता से ओत-प्रोत परिवार सदा सुखी रहता है।

मानवता किसे कहते हैं? जो बात आप अपने लिए अच्छी नहीं समझते, वह दूसरों के लिए भी अच्छी न समझो।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्। (महा०)

महर्षि दयानन्द मानव के सम्बन्ध में कितने पते की बात कहते हैं—

'मनुष्य उसी को कहना जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे।'

'जिस-जिस कार्य से जगत का उपकार हो वह कार्य करना और

जो कर्म हानिकारक है उसे छोड़ देना ही मनुष्य का परम कर्तव्य है।'
(सत्यार्थप्रकाश)

गृहस्थी इस ऋषि-वचन में आए जगत् शब्द के स्थान में 'परिवार' कर ले और परिवार का कोई भी कार्य करने से पूर्व भली-भाँति स्वार्थ छोड़कर विचार कर ले कि जो पग मैं उठा रहा हूँ या उठा रही हूँ इससे परिवार को हानि तो नहीं पहुँचेगी? मानवता कहती है, केवल अपने को सुख पहुँचाने की अभिलाषा उचित नहीं; अपनी मनमानी करके कुछ सुख पा भी लिया हो तो अन्त में एक ऐसा पछतावा जागता है जो सदा के लिए मानसिक अशान्ति की आग में जलाता रहता है; अतः मनमानी न करो, मानवता से काम लो।

मानवता की भावना निर्बल हो जाने के कारण छोटी-सी स्वार्थ-सिद्धि के लिए परिवार के भविष्य का विचार न करना मनुष्यपन से गिर जाना है। पति और पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-भाई, बहन-बहन यदि मानवता के ऊँचे आदर्श को समक्ष रक्खेंगे तो परिवार सुख का श्वास ले सकेंगे। आजकल यह जो परिवारों में कलह-क्लेश दिखाई देता है, इसका बड़ा कारण मानवता का अभाव है। सचमुच आज दुःखी परिवारों में मानवता कहाँ? परिवार के सारे सदस्य नज़र तो मानव ही आते हैं परन्तु ठीक कहा है एक कवि ने—

सब लुट गया सरे-आम सपन बाकी है।
अब तो शबनम की जगह तपन बाकी है।
आज आँखें भी हैरत से परेशाँ हैं।
इनसान लापता है, कफ़न बाकी है।

इन्सान का केवल ढाँचा रहकर इन्सानियत गुम हो चुकी है। परिवार को सुखी बनाना है तो हरएक सदस्य व्रत धारण करे कि मैं सच्चा मानव बनकर सारा व्यवहार करूँगा।

परिवार के हरएक मेम्बर को प्रतिदिन यह देखना चाहिए कि मैंने किसी का मन तो नहीं दुखाया? बहन-भाई, माता-पिता और दूसरे सम्बन्धियों से आज मेरा व्यवहार मानवता का रहा या मानवता से गिरनेवाला रहा?

'महाभारत' के शान्तिपर्व का यह श्लोक देखिए—

मनसः प्रतिकूलानि प्रेत्य चेह न चेच्छसि ।
भूतानां प्रतिकूलेभ्यः निवर्तस्व नराधिप ।।

यदि तू चाहता है यहाँ और दूसरे जन्म में तेरे प्रतिकूल कोई बात न हो तो तुझे चाहिए कि तू भी कोई ऐसा काम न कर जो दूसरे प्राणियों के प्रतिकूल हो ।

हिन्दी कवि ने ठीक कहा है—

जैसी करनी पार उतरनी, किस मिस तुम सब फूलो ।
राई-राई का लेखा होगा, बात कभी मत भूलो ।।

अतः परिवार में रहते हुए सावधान रहो ! कोई बात ऐसी न होने पाये जिसके कारण परिवार में मानवता दुर्बल हो जाये । वैसे 'मनुष्य' शब्द की निरुक्ति यही है—

मत्वा कर्माणि सीव्यति ।। नि० ३ । ७ ।।

जो विचारकर कर्म करे, वह मनुष्य है । परन्तु कई बार निकृष्ट-स्वार्थ विचार को भी दूषित कर देता है। एक देवी कहने लगी कि मैं तो परिवार में सबके साथ मानवता का बर्ताव करती हूँ, परन्तु मेरे साथ तो दानवता का ही व्यवहार हो रहा है। मैंने कहा—बेटी, मानव का एक यही तो जन्म नहीं। पता नहीं पिछले किसी जन्म में तूने दानवता का व्यवहार किया होगा, जिसके कारण तुझे फूल के बदले काँटा मिल रहा है; परन्तु यदि तूने भी काँटा देना शुरू कर दिया तो यह अदला-बदला कभी समाप्त नहीं होने का। अतः तुम मानव ही बनी रहो । गृहस्थ को सुखी करने का यह पहला गुर है ।

दूसरा साधन 'प्रसन्नता'—प्रसन्न रहने का स्वभाव परिवार में स्वर्ग का वातावरण बनाए रखता है । व्यापार या दूसरे कारोबार से या ऑफिस से आए हो या स्कूल-कॉलेज से अथवा किसी को मिलकर आए हो तो मुस्कराते हुए घर पहुँचो । कुछ लोग ऐसे स्वभाव के देखे गए जो बाहर तो हँसते रहेंगे, अच्छे मूड में रहेंगे और घर पर आते-आते गम्भीर या उदास हो जाएँगे । एक सज्जन से मैंने पूछा कि आप ऐसा क्यों करते हैं ? कहने लगे कि घर में हँसता आऊँ तो पत्नी और

बच्चे सब गुस्ताख हो जाएँ; रोब रखने के लिए कुछ गम्भीर होना पड़ता है। मैंने कहा कि तुम अपने-आप को जेल का दरोगा समझते हो क्या? और क्या तुम्हारा घर-परिवार है या जेलखाना? मेरे भाई! पत्नी और बच्चों पर प्यार का जादू चलाओ, न कि क्रोध का। कुछ देवियाँ भी ऐसी देखी गईं कि दिन-भर तो खुशी के मूड में रहेंगी और जब पतिदेव के घर आने को समय होता है तो रूठी रानी बन जाती हैं। पति दिन-भर कार्य करता थका-थकाया घर आता है और घर में बिगड़े मूड का वातावरण देखता है तो उसके मन पर एक चोट-सी लग जाती है। वेद के शब्दों में पति तो पत्नी को अपने मनरूपी घोंसले का पक्षी समझता है और कहता है—

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित् पश्यन्मनसः कुलायम् ॥
—अथर्व० १४ । १ । ५७ ॥

'मैं इस (पत्नी) के रूप को अपने अन्दर खोलता हूँ जिसको मैंने अपने मन का घोंसला देखते हुए प्राप्त किया।'

जो पक्षी दिन-भर थककर घोंसले में आए और उसे वहाँ घोंसला ही न मिले तो पक्षी की अवस्था क्या होगी? ऐसे ही जिस पति को घर पहुँचते ही प्यार-सत्कार तथा प्रसन्नता न मिले, उसकी गति क्या होगी? कितने ही पति अपनी पत्नी के क्रूर स्वभाव के कारण अधिक समय घर से बाहर ही व्यतीत करना अच्छा समझते हैं। होना यह चाहिए कि चाहे दिन में कोई प्रतिकूल बात भी हो गई हो, तो भी मिलन-समय पत्नी के मुख पर मुस्कराहट होनी चाहिए। खिला मुख देखकर पति की दिन-भर की थकावट उतर जाये और पत्नी जब पति के आगमन की प्रतीक्षा का मधुर वाणी में वर्णन करे तो पति में नव-जीवन तथा नव-शक्ति का संचार हो जाये। इसी प्रकार से पति चाहे दिन-भर दुःखी ही रहा हो, परन्तु घर जाने पर चिन्ता का कोई चिह्न उसके मुख पर नहीं होना चाहिए। समझदार पति तो घर पहुँचते ही प्रसन्नता, हँसी-खुशी का वातावरण बना देते हैं। मीठे-मीठे विनोद, कुछ लतीफे, कुछ पत्नी के गुणों और बच्चों के मीठे स्वभाव का वर्णन कर देते हैं; आप भी प्रसन्न होते हैं और परिवार को भी हँसा देते हैं।

परन्तु कुछ पति ऐसे भी देखे गए हैं जो सबकी शिकायत शुरू कर देते हैं—'अजी, क्या बताएँ ! दफ्तर में तो सिर पर तलवार लटकी रहती है। नीचेवाले काम नहीं करते, ऊपरवाले जान खाते रहते हैं। मैं ही दफ्तर में एक ऐसा हूँ जो रिश्वत नहीं लेता और मेरे ही विरुद्ध रिपोर्ट पर रिपोर्ट होती रहती है। जान आफ़त में फँस गई है। इस युग में तो शरीफ़ होना ही पाप है। यह आनन्द स्वामी हम लोगों को वेद की बात सुना-सुनाकर बिगाड़ता रहता है। न स्वामी की बातें सुनते, न शरीफ़ बनते, न दुःख भोगते; रिश्वत लेते, व्हिस्की पीते, तमाशे देखते, मज़े में रहते।'

एक और गृहस्थ की बात सुनिये ! उसकी पत्नी बड़ी समझदार और विदुषी थी, परन्तु पति चिन्ता ही की बातें किया करता; घर पहुँचते ही पत्नी के पास बैठकर आनेवाले दुःखों का रोना शुरू कर देता—'देख भागवान ! अब हमारे बच्चे होंगे, खर्चे बहुत बढ़ गए हैं, धन्धा-रोज़गार कम हो गया है, व्यापार में कोई सार नहीं रहा, इन्कम-टैक्सवाले ही दम नहीं लेने देते, फिर महँगाई कितनी ? मेरा तो कचूमर निकल जाएगा। बड़ी माता बीमार है। उसकी मृत्यु के दिन निकट ही समझ। वह मर गई, तो बिरादरीवाले ८-१० हज़ार रुपया तो खर्च करा ही देंगे। उधर पुराने मकान की मरम्मत १०-१२ हज़ार खुलवा देगी और इधर तेरे बच्चा होनेवाला है। तेरी न ननद से बनती है न देवरानी-जिठानी से; कोई आया-दाया रखनी पड़ेगी। कितना खर्चा हो जाएगा ! फिर बच्चा होने पर उसका पालन, उसका पठन-पाठन, फिर बच्चों के भी बच्चे होंगे, उनका खर्चा। हे भगवान् ! मैं तो खर्चा देखकर मरा जा रहा हूँ। खर्चे-पर-खर्चा चला आ रहा है।'

प्रतिदिन घर आते ही यह सरगम शुरू हो जाता। रोज़-रोज़ यही दुखड़ा पत्नी सुनती थी। विदुषी पत्नी ने सोचा—कैसे समझाऊँ पतिदेव को ? इसपर उसने विचार करके एक योजना बनाई और उसके अनुसार उसने घर का कोई काम-काज न किया। सारा घर बिना सफाई के रहने दिया। रात को पति घर आया तो देखा, घर सब अस्तव्यस्त पड़ा है; दीपक भी नहीं जला। आते ही पति ने कहा—'क्या हो गया है

आज ?' उधर पत्नी कपड़ा ओढ़े हाय-हाय करती लेटी थी; कहने लगी—'नाराज़ पीछे होना, पहले मेरी व्यथा तो सुन लीजिये !' पति पास बैठ गया। पत्नी ने अपनी कथा शुरू की—'आज आपके कुल-पुरोहित पधारे थे। उन्होंने मेरा हाथ देखकर बतलाया कि मेरी आयु साठ (६०) वर्ष की होगी और मेरे यहाँ आठ सन्तान होंगी। आप जानते हैं मेरी आयु अभी बीस वर्ष की है। मुझे अभी चालीस वर्ष और जीना है। हे मेरे भगवान् ! इतना लम्बा समय कसे व्यतीत होगा ? मेरे दुःखों की गिनती सुन लो, फिर नाराज़ होना। मुझे प्रतिदिन दस रोटियाँ पकानी पड़ती हैं; महीने में ३०० और एक वर्ष में ३६०० और आने-वाले चालीस वर्षों में ज़रा गणना तो कीजिए कि क्या एक लाख ४४ हज़ार रोटियाँ नहीं बनतीं ? हे प्रभो ! इतनी रोटियाँ मुझसे कैसे पकेंगी ? फिर आठ सन्तान ! अभी एक ही बच्चा कोख में आया है तो मरी जा रही हूँ। आठ बच्चे ! हाय राम ! मैं मरी ! इतने दुःख सहन न कर सकूँगी।' पति ने सुना तो मुस्कराकर कहा—'पगली हो गई है तू क्या ? आठों बच्चे क्या एक ही दिन जनेगी तू ? और फिर क्या सारी रोटियाँ एक दिन में पकानी हैं ? इतना लम्बा हिसाब करके क्यों बे-मतलब चिन्ता करके दुःख़ी हो रही है ? धीरे-धीरे सब कार्य होते रहेंगे।'

यह सुनकर पत्नी उठकर बैठ गई और कहने लगी, 'मुझे तो उपदेश दे रहे हो और आप बच्चों के भी बच्चों की चिन्ता लेकर रोज़ बैठ जाते हो। आप खुद भी दुःखी होते हो और मुझे भी दुःखी करते हो। दुःख धीरे-धीरे जाएँगे; यत्न करना हमारा कर्त्तव्य है। प्रभु की इच्छा के अधीन हो जाओ, सब ठीक होगा।' पत्नी की इस बात ने पति को सन्मार्ग दिखला दिया। प्रसन्नता मनुष्य का ऐसा गुण है जो उसे सर्वप्रिय बना देता है। हर समय शिकायत ही करते रहने से मनुष्य निराशा-वादी बनने लगते हैं। उन्हे फिर परिवार का कोई भी सदस्य अच्छा नहीं लगता। एक ऐसे ही सज्जन अपने परिवार की बात सुनाने लगे कि 'लड़के तो हैं परन्तु वे तो हाथ से निकले जाते हैं। लड़कियाँ भी अब हमारी नहीं सुनतीं; और आप कहते हैं कि प्रसन्न रहें ?' मैंने पूछा

'क्या अप्रसन्न रहने से बच्चे आपके अनुकूल हो गए ? जब यह भी नहीं हुआ तो अप्रसन्न रहकर आप अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेंगे और परिवार में दुःख की मात्रा बढ़ जायेगी।' प्रसन्न रहने का पहला गुर यह है कि पति या पत्नी या बच्चों के अवगुण न देखो। उनमें जो अच्छे गुण हैं उनकी सराहना करो, उनका साहस बढ़ाओ। यदि कोई आलसी या कामचोर है तो बार-बार उसको उसका अवगुण याद न कराओ। यदि एक ही बुरी बात बार-बार दोहराई जाएगी तो मनोविज्ञान की दृष्टि से यह उसे और अधिक बिगाड़ना होगा। किसी मेम्बर के अवगुण या क्रोध को अप्रसन्नता से नहीं, प्रसन्नता तथा प्यार से दूर करो। भगवान् कृष्ण ने कहा है कि प्रसन्न रहनेवाले के कष्ट-क्लेश अपने-आप दूर हो जाते हैं। मन का तप तो प्रसन्नता ही है। मानसिक तप यही है कि मन में ईर्ष्या, दुःख, चिन्ता न आने दो और इसे प्रसन्न रक्खो। यदि परिवार में कोई ऐसी-वैसी घटना हो जाये जिससे प्रसन्नता के चन्द्रमा पर काली घटाएँ छा जाएँ तो एकान्त में बलात् खिलखिलाकर हँसो। मनोविज्ञान के एक विद्वान् ने ठीक कहा है कि 'Cultivate cheerfulness by smiling often!' अर्थात् अपने अन्दर प्रसन्नता की फुलवाड़ी लगाने के लिए कई बार मुस्कराया करो। जहाँ पक्षी चहचहा रहे हों वहाँ बैठकर उनका प्रातः-सायं का कीर्तन सुना करो। किसी जलप्रपात के निकट जाकर उसके जलतरंग से मन बहलाओ। फूलो से बातें करो। प्रभु-भक्ति का सुन्दर गीत मुँह से गुनगुनाओ। फिर कुदरत को देखो कि सारी दुनिया खिलखिला रही है।

काली घटाएँ देखकर मोर नाच उठता है। आम के बौरों की हवा कोयल का कण्ठ खोल देती है। सूर्य की रश्मियाँ कमल का हृदय गुदगुदा देती हैं। चन्द्रमा को देखकर चकोर अपनी सुधबुध भूल जाता है। पूर्णमासी का चन्द्र समुद्र की छाती खोल देता है। तब ओ मानव ! तू ही उदास क्यों बैठा है ? प्रभु की महिमा देख ! क्षण-भंगुर बातों में फँसकर चिन्तित न हो ! हँस ! ज़ोर से हँस ! खिलखिलाकर हँस ! ऐसा करने से तेरा गृहस्थ सुखी बन जायेगा।

तीसरा साधन 'हार्दिक प्रेम-भावना'–प्रेम गृहस्थाश्रम-रूपी वाटिका

का प्राण है। प्रेम पति-पत्नी को मृत्यु-पर्यन्त ऐसे बाँधे रहता है जैसे चुम्बक लोहे को बाँधे रखता है। सारे परिवार का संगठन प्रेम के सीमेंट ही से चिरस्थायी बनता है। प्रेम लाभ-हानि नहीं देखता है। प्रेम बदला नहीं चाहता; अपने-आपको दूसरों के हित और प्रसन्नता पर बलिदान करना चाहता है। प्रेम की मूल भित्ति त्याग है। त्याग के बिना प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं होता। पति पत्नी के लिए और पत्नी पति के लिए त्याग करे। पिता पुत्र के लिए, पुत्र पिता के लिए, भाई-बहन एक-दूसरे के लिए त्याग करें। क्या त्याग करें? केवल एक चीज़ का—'स्वसुख-इच्छा का त्याग।' अपने सुख की इच्छा प्रेम का नाश करने-वाली है। वास्तविक प्रेम होता ही तब है जब उस प्रेम के पीछे स्वसुख-इच्छा न हो। यदि परिवार के लोग अपने ही स्वार्थ, निजी सुख के लिए प्रेम करते हैं तो यह प्रेम शीघ्र समाप्त हो जाएगा। जब भी स्वसुख में बाधा पड़ती नज़र आई, तभी प्रेम का ढोंग, प्रेम का मुलम्मा उतर गया; और यह प्रेम बड़ा कोमल, अत्यन्त कोमल पदार्थ है। ज़रा-सी चोट लगने पर प्रेम में बाधा पड़ जाती है; और जब प्रेम में एक बार विकार आ गया तो नये सिरे से जुड़ता नहीं। 'रहीम' का यह दोहा सब गृहस्थियों को सदा सामने रखना चाहिए—

रहिमन धागा प्रेम का, जब तोड़ो झटकाय।
टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ जाय॥

टूटे हुए धागे को जोड़ा जायेगा तो गाँठ पड़ जायेगी। प्रेम का धागा जोड़ने पर गाँठवाला हो जाता है। अतः प्रेम में बाधा पड़ने ही नहीं देनी चाहिए और इसके लिए आवश्यक है कि स्वार्थ की कैंची को निकट न आने दिया जाए। 'मैं', अहंकार, अभिमान और शारीरिक सुख, यही स्वार्थ है। पूना के एक परिवार की मैंने बुरी अवस्था देखी। दोनों पति-पत्नी अकड़खाँ थे—अभिमान के पुतले। दोनों में अनबन रहती। बच्चे भी पैदा करते रहते और लड़ते-झगड़ते भी रहते। पति पत्नी को दोषी बतलाता, पत्नी पति को। गाली-गलौज भी होता; कभी-कभी मारकुटाई भी। बच्चे बड़े हो गए, तो भी गृहयुद्ध जारी रहा। बेटी विवाह योग्य हो गई; परन्तु जिस घर में माता-पिता कलह-क्लेश

बनाए रक्खें, उनकी बेटी कौन अपने घर लाए ? इस पति-पत्नी ने अपने प्रेम का धागा तोड़कर लड़ाई-झगड़े को अपनाकर लोक-परलोक तो बिगाड़ा, साथ ही अपने बच्चों को भी नरक में डाल दिया, फिर भी उनकी 'मैं', अकड़ और स्वसुख की इच्छा कम नहीं हुई। एक स्थान पर रहते हुए कुछ मन-मुटाव हो ही जाया करता है, परन्तु माता-पिता को चाहिए कि अपने मन-मुटाव की प्रदर्शनी नौकरों तथा सन्तान के सामने न किया करें। उनके सामने प्रसन्न ही रहा करें और प्रेम भी जताया करें।

हार्दिक और निस्स्वार्थ प्रेम जहाँ होगा, वहाँ मन-मुटाव कभी हो ही नहीं सकता। हृदय की प्रेम-तरंग में सब शिकायतें, त्रुटियाँ, कड़वे वचनों के अम्बार इस प्रकार बह जाते हैं जैसे भयंकर बाढ़ में बड़े-बड़े वृक्ष बह जाते हैं। एक उर्दू कवि ठीक कहता है—

उल्फ़त में बराबर हैं जफ़ा हो कि वफ़ा हो।
हर चीज़में लज्ज़त है अगर दिल मेंमज़ा हो॥

इसलिए हृदय में जोत जगाए रक्खो। प्रेम की आग बाँस की लकड़ी की आग की भाँति है जिसे फूंकों से जीवित रक्खा जाता है; प्रेम को भी बराबर देखते रहना, कहीं अनादर, अरुचि तथा सन्देह की राख उसकी ज्योति कम न कर दे। प्रेम के प्रसंग में एक आवश्यक बात का वर्णन करना उचित है और वह यह कि यह प्रेम पति-पत्नी में केवल आरम्भ में ही नहीं होना चाहिए; अपितु जितना समय व्यतीत होता जाये, प्रेम अधिक बढ़ता चला जाये। इसके लिए परस्पर आदर-मान, मीठी वाणी, एक-दूसरे की मानसिक प्रसन्नता का पूरा ध्यान, एक-दूसरे के सम्बन्धियों का सत्कार, उनकी आवश्यकताओं को यथाशक्ति पूरा करना बहुत ज़रूरी है। इन बातों के साथ यह भी पूरा ध्यान रखना कि कोई ऐसा काम न किया जाए जिससे पति या पत्नी के मन में कोई सन्देह पैदा हो जाये।

विवाह के संस्कार में इसीलिए यह प्रतिज्ञा की जाती है कि हम एक-दूसरे से चोरी या छिपाकर कुछ नहीं करेंगे। न अकेले खायेंगे, न अकेले जायेंगे, न अकेले रहेंगे।

देवियों के प्रति वेद तथा शास्त्र ने बड़ा आदर दिखलाया है। देखिए, वेद कहता है—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥
—ऋ० १०। ८५। ४६॥

'हे वधू! महारानी हो ससुर के पास, महारानी हो सास के पास, महारानी हो ननद के पास और महारानी हो देवर के पास।'

वेद ने वधू को कितना बड़ा मान दिया है! दूसरी किसी जाति में इतना आदर स्त्री को नहीं दिया गया। यूरोप में तो एक समय वह भी था जब कहा जाता था कि स्त्रियों में आत्मा होती ही नहीं। वेद ने जहाँ वधू को महारानी बना दिया, वहाँ यह भी आदेश दिया कि—

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥
—अथर्व० १४। २। २७॥

'सास-ससुर के लिए सुख देनेवाली हो! पति के लिए सुख देनेवाली हो! घर के सब लोगों के लिए सुख देनेवाली हो! इन सब मनुष्यों (छोटे-बड़ों) के लिए सुख देनेवाली बनकर इन सब की पुष्टि के लिए तत्पर रह!'

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्॥
—अथर्व० १४। १। ४२॥

'सौमनस्य, सन्तान, सौभाग्य और ऐश्वर्य की कामना करती हुई, पति के अनुकूल कर्मोंवाली होकर अमर जीवन के लिए सन्नद्ध हो!'

चकवा-चकवी की तरह प्यार करनेवाले पति-पत्नी हों। इसके लिए प्रभु से कितनी सुन्दर याचना की गई है—

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्॥
—अथर्व० १४। २। ६४॥

'हे शक्तिशाली परमेश्वर ! इस दम्पती को चकवा-चकवी की न्याईं प्रेम के पूरे रंग में प्रेर, सन्तति-समेत यह जोड़ा उत्तम घरों में रहे और पूर्ण आयु भोगे !'

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।।
—ऋ० १० । ८५ । ४२ ।।

'यहाँ ही रहो (सदा इकट्ठे रहो), मत जुदा-जुदा होओ ! अपने घर में पुत्र-पोतों के साथ खेलते हुए, आनन्द मनाते हुए सारी आयु भोगो !'

यह था गृहस्थ को सुख तथा प्रसन्नता का केन्द्र बनाने का गुर ।

पश्चिम में देवियों के लिए इतनी मान-मर्यादा नहीं । पहले ही नहीं, आजकल भी स्त्रियों के सम्बन्ध में बड़े हीन विचार प्रकट किये जाते हैं ।

इंग्लैण्ड की विख्यात लेखिका मिस मारगरी लॉरेंस अपनी एक पुस्तक में लिखती हैं कि—'स्त्री एकान्त को पसन्द करती है; वह कहीं जाना इसीलिए अच्छा नहीं समझती कि उसे बहुत-सी स्त्रियों से मुकाबला करना पड़ता है । स्त्रियाँ परस्पर एक-दूसरी को देखकर जलती हैं, डाह करती हैं । इतना ही नहीं, स्त्रियाँ दूसरे के गुण और स्वभाव को चुरा लेने में बड़ी तेज़ होती हैं । यहाँ तक कि यदि किसी स्त्री को किसी दूसरी स्त्री का पति पसन्द आ जाय तो वह उसे भी चुरा लेने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करती ।' यही मिस लॉरेंस फिर लिखती हैं कि 'बहुत-से पुरुष एक-साथ रह सकते हैं, परन्तु स्त्रियाँ एक-साथ नहीं रह सकतीं ।'

बहुत बुरा चित्र मिस लॉरेंस ने स्त्री का अंकित किया है, परन्तु मेरा यह विचार है कि यूरोप की सारी नारी-जाति ऐसी नहीं है । हाँ, यह ठीक है कि आधुनिक काल की शिक्षा-दीक्षा तथा दूषित वातावरण बहुतों को बिगाड़ रहा है । अमरीका तो इस क्षेत्र में बड़ा दुःखी है । इतना धन-दौलत-विज्ञान होते हुए भी वहाँ गृहस्थ जीवन में वह माधुर्य, वह प्यार और वह सुख नहीं जो मानव चाहता है । कारण वही—सच्चे निस्स्वार्थ प्यार की कमी । अमरीका के एक साप्ताहिक पत्र में

पति-पत्नी के प्यार के सम्बन्ध में प्रश्न-उत्तर प्रकाशित हुए थे। वे आँखें खोलनेवाले हैं।

प्रश्न—क्या आपका गृहस्थ सफल है? आपने ठीक साथी को चुना और क्या आप अच्छी पत्नी सिद्ध हुईं?

उत्तर—नहीं; मेरे विवाह को केवल असफल ही नहीं कह सकते, अपितु सर्वनाश कहना चाहिए। उन्नीस वर्ष विवाह की दुर्घटना घटे हो गए। तीन बच्चे भी हैं, परन्तु मैं अब समझी कि मैंने सर्वथा ग़लत साथी चुना, जैसे कोई बिल्ली उल्लू को साथी बना ले।

प्रश्न—घरेलू खर्च के सम्बन्ध में कोई बुनियादी समझौता आप दोनों में है?

उत्तर—हाँ, हम दोनों फ़िज़ूल खर्च को बुरा समझते हैं। मेरा पति मेरे अति व्यय को बुरा कहता है। मैं उसके अति व्यय की शिकायत करती हूँ।

प्रश्न—क्या आप शीघ्र नाराज़ हो जाती हैं?

उत्तर—नाराज़ होने का वह समय ही नहीं देते। मैं कहती हूँ कि अब मैं बड़ी हो गई, क्या मुझे ऊँचे फ्रॉक नहीं पहनने चाहिएँ? तो वे कहते हैं—हाँ।

प्रश्न—क्या आप पति से बहुधा झगड़ती रहती हो?

उत्तर—झगड़ूँ नहीं तो उनसे अपनी व्यर्थ की बातें कैसे मनवा लूं?

प्रश्न—क्या आप पति-पत्नी का कोई साँझा उद्देश्य है?

उत्तर—है क्यों नहीं! हम दोनों बहुत-बहुत बड़े धनी बनना चाहते थे, परन्तु ऐसा हो नहीं सका क्योंकि हम दोनों ने विवाह कर लिया।

प्रश्न—क्या तुम्हारे पति कोई ऐसा काम भी करते हैं जिससे तुम घबराओ?

उत्तर—हाँ, वह बड़ी बदतमीज़ी से स्नानागार में नहाता है; शीशे पर भाप आ जाती है; वह ऐश-ट्रे में सेब के छिलके डाल देता है।

प्रश्न—क्या छोटी-छोटी बातों से तुम्हारा पति खीज जाता है?

उत्तर—हाँ, बाथरूम में जराब लटक रही हो, मोटर-कार की चाबी

न मिले, टेलीफ़ोन का हुक नीचे पड़ा हो तो पति का पारा चढ़ जाता है।

प्रश्न—क्या तुम पति के काम में उसकी सहायता करती हो?

उत्तर—हाँ, मैं उसे सर्वदा प्रेरणा देती रहती हूँ कि अपना वेतन शीघ्र बढ़ाने का यत्न करे।

प्रश्न—क्या तुम परस्पर बातें करना पसन्द करते हो?

उत्तर—हाँ, परन्तु कठिनाई बातें करने में नहीं, बातें सुनने में है।

प्रश्न—किसी पार्टी पर जाने के लिए जैसे तुम बन-ठनकर जाती हो, क्या पति को रिझाने, प्रसन्न करने के लिए भी करती हो?

उत्तर—ऐसे फ़िज़ूल प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह ऐसा रहस्य है जो स्त्रियाँ ही जान सकती हैं।

प्रश्न—जब कोई बिगाड़ हो जाता है तो क्या तुम एक-दूसरे को कोसते हो?

उत्तर—सर्वदा नहीं। कभी हम बच्चों को, कभी पड़ोसी को, कभी सरकार को कोसते हैं; अपनी ग़लती कभी नहीं मानते और बड़े ज़ोर से द्वार खटखटाते हैं।

ये प्रश्नोत्तर पढ़कर ज्ञात होता है कि प्रेम के अभाव से उनका गृहस्थ अजीर्ण हो गया है। पति-पत्नी की रंजिश तभी दूर होती है जब हृदय में प्रेम हो। इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया के जीवन की एक घटना ठीक पथ-प्रदर्शन करती है। कुछ घरेलू समस्याओं पर विचार करते हुए विक्टोरिया ने कुछ ऐसे शब्द कह दिये जिनसे महारानी होने की गन्ध टपकती थी। प्रिन्स एलबर्ट अधिक सहन न कर सके और अपने कमरे में जाकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। पाँच मिनट बाद महारानी विक्टोरिया ने जाकर द्वार खटखटाया। एलबर्ट ने पूछा—'द्वार पर कौन है?'

'मैं हूँ इंग्लैंड की महारानी, द्वार शीघ्र खोलो!' परन्तु द्वार नहीं खुला। विक्टोरिया कुछ समय तक विचार करती रही। उसे पति के रुष्ट होने का अनुभव हो चुका था और चाहती थी कि यह नाराज़गी शीघ्र दूर हो जाये। थोड़ी देर के पश्चात् विक्टोरिया ने फिर खट-खटाया। 'कौन है?' एलबर्ट ने पूछा। बड़े प्रेम-भरे शब्दों और मीठी

आवाज़ में विक्टोरिया ने कहा—'मैं हूँ आपकी प्यारी पत्नी।' द्वार खुल गया और रंजिश भी तत्काल जाती रही।

गृहस्थ सुखी बनाने के लिए पति-पत्नी, पुत्र-पुत्रियों और परिवार के सभी मेम्बरों का प्रेम आवश्यक है। परन्तु गृहिणी शब्द से पत्नी को ही लिया जाता है, अतः पत्नी की ज़िम्मेदारी सबसे अधिक समझी जाती है। कवि कालिदास ने 'रघुवंश' में पत्नी को गृहिणी, सखी, मित्र, प्रिया, सचिव और ललिता कहा है।

डिज़रायली, जो ग़रीब कुटुम्ब में पैदा हुआ और उन्नति करते-करते इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री बन गया, उसका अनुभव यह है कि सफल पारिवारिक जीवन का एक ही रहस्य है कि पत्नी की तुष्टि का सबसे पहले और सबसे अधिक ख़याल रक्खा जाय। यदि पत्नी को प्रसन्नता और प्यार मिलता है तो वह ये पदार्थ सारे परिवार में बाँटती है।

रूस के सन्त टालस्टाय का गृहस्थ-जीवन बड़ा दुःखी था। एक दिन वैज्ञानिक गोर्की के साथ बातचीत में उन्होंने अपनी वेदना इस प्रकार प्रकट की, 'भूकम्प के खतरे से मानव का उद्धार हो सकता है, महामारी की सख्ती से भी बचा जा सकता है, आत्मपीड़ा से भी मनुष्य त्राण पा सकता है, परन्तु पत्नी के अत्याचार से पति को संरक्षण प्राप्त कर सकना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं है।'

अमरीका का राष्ट्रपति लिंकन तो पता नहीं कितना दुःखी था! उसका एक पत्र 'शिकागो हिस्टॉरिकल सोसाइटी' में सुरक्षित पड़ा है जिसमें लिखा है—

"मैं सोचता हूँ कि इस जगत् के सारे प्राणियों में मैं ही सबसे दुःखी प्राणी हूं। यदि मेरे हृदय की वेदना संसार के सभी प्राणियों में बाँट दी जाय तो इस पृथिवी पर एक भी प्राणी प्रसन्न-वदन नज़र नहीं आएगा। मैं जिस रूप में हूँ, उस रूप में मेरे लिए जीना ही असम्भव है।" लिंकन के जीवनी-लेखक मि० जिमी स्माइल्स ने लिखा है कि एक बार श्रीमती लिंकन ने अपने पति पर गर्म चाय का प्याला अतिथियों के सामने उँडेल दिया था। सन्त सुकरात की पत्नी ने भी कीचड़

का बर्तन पति के सिर पर डाल दिया था और सुकरात की सहनशीलता तथा प्यार ने पत्नी का जीवन बदल डाला था। महात्मा गांधी ने भी अपनी पत्नी कस्तूरबा के सम्बन्ध में लिखा है कि—

"मेरे शुरू-शुरू के अनुभव के अनुसार 'बा' बहुत हठीली थी जिससे हमारे बीच थोड़े समय तक या कभी-कभी लम्बी कड़वाहट भी रहती। लेकिन जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे 'बा' का व्यक्तित्व भी खिलता गया और वे परिपक्व संकल्प तथा विचारों के साथ मुझमें और मेरे काम में समाती गई।"

स्त्री हो या पुरुष, दोनों न देवता हैं न दानव, अच्छे-बुरे दोनों रूपों में मिलते हैं। किसी को कड़वा अनुभव होता है, किसी को मीठा। एक मीठा अनुभव सुनिये! चवालीस वर्ष मैंने गृहस्थाश्रम में सुख, प्रसन्नता, सफलता तथा प्यार से रहकर भरा-भराया घर छोड़ दिया। छः पुत्र, दो पुत्रियाँ, कितने ही पोते-पोतियाँ तथा नाती परिवार में खेलते थे; सारा वैभव था। लम्बे और सुखी गृहस्थ के पश्चात् यह व्यक्ति जब दीक्षा लेकर संन्यासी बना तो तपोवन में बैठे स्त्री-पुरुषों ने इस संन्यासी से पूछा कि आपने इतनी बड़ी छलाँग कैसे लगाई? उत्तर यह था कि पत्नी के अगाध तथा निस्स्वार्थ प्यार ने मुझे इस मार्ग पर अग्रसर किया। मेरी हर इच्छा को पूरा करने में उसे प्रसन्नता होती थी।

मैं जब कहता कि अन्त में मुझे संन्यासी बनना है तो कहती कि कोई पत्नी पति-वियोग सहन करना नहीं चाहती। परन्तु इस कठिन कार्य में भी मैं सहायक बनूँगी और गृहस्थ में रहते हुए संन्यास की तैयारी में जो बीस वर्ष गुज़रे, इस देवी ने इन वर्षों में सहयोग ही नहीं दिया अपितु प्रेरणा और उत्साह भी दिया, फिर भी प्रेम में कमी नहीं आई। प्रेम तो एक दिव्य और आत्मिक रत्न है। इसे कामवासना और स्वार्थ-सिद्धि में प्रयोग करके दूषित क्यों किया जाये और गृहस्थ को दुःख-सागर क्यों बनाया जाये?

हार्दिक प्रेम बुरी तरह तब घायल होता है जब किसी भी प्रकार से मन में सन्देह आकर डेरा डाल ले। कई बार निर्मूल सन्देह भी कष्ट देता है। पश्चिम की एक घटना सुनी जाती है कि एक विवाहित युवक

दफ्तर से घर की ओर आ रहा था। मार्ग में कबाड़ी की दुकान थी वहाँ एक शीशा पड़ा था। उसे उठाकर देखा तो अपना रूप उसे नज़र पड़ा; कहने लगा—'यह तो मेरे पिताजी का फ़ोटो है।' कीमत देकर खरीद लाया और घर पहुँचकर अपने ट्रंक में रख दिया। दफ्तर जाने से पूर्व उस शीशे को अपने पिता की फ़ोटो समझ प्रतिदिन देख लेता, मुस्कराता और शीशा वहीं रख देता। प्रतिदिन ऐसा होने लगा। एक दिन उसकी पत्नी के मन में सन्देह पैदा हुआ कि यह किसका फ़ोटो रोज़ देखकर मुस्कराते हैं? यही बैठी विचार कर रही थी कि एक सहेली ने आकर पूछा, 'बहन, किस विचार में निमग्न हो?' वह कहने लगी, 'प्रतिदिन तेरे भाई दफ्तर जाने से पूर्व ट्रंक से किसी का फ़ोटो निकालकर देखते हैं और फिर रख देते हैं।' सहेली कहने लगी, 'बहन, दुनिया बड़ी बिगड़ गई है। देख तो सही कि कहीं काम बिगड़ तो नहीं गया?' उसने उठकर ट्रंक खोलकर शीशा निकाला। उसमें अपनी सुन्दर छवि देखी तो चिल्ला उठी—'यह देख तेरे भाई की करतूत! रोज़ गिरजा जाता है और यह देख, किसी गर्ल-फ्रेंड का फ़ोटो प्रतिदिन देखता है। अच्छा, आज आ ले घर, इस बगुले भक्त की खबर लेती हूँ!'

सायं-समय पति मुस्कराता घर पहुँचा तो पत्नी चण्डीरूप धारण किये बैठी थी। पति ने अभी पग अन्दर रक्खे ही थे कि पत्नी अंगारे फेंकने लगी—'यह कहाँ की छिनाल का फ़ोटो ट्रंक में रक्खा हुआ है? मुझसे तो सुन्दर नहीं है। लगभग मेरे ही जैसी है। तब उसपर लट्टू क्यों हो गये हो?"

पति ने कहा—'क्या हो गया है तुझे आज? कौन-सा फ़ोटो? वह ट्रंकवाला? वह तो मेरे पिताजी का फ़ोटो है।'

पत्नी—'रहने दो!' यह कहकर शीघ्रता से शीशा निकाल उसमें देखा और कहने लगी—'यह तुम्हारे पिता हैं? यह तो कोई तुम्हारी गर्ल-फ्रेंड है।' पति ने शीशा उसके हाथ से छीना और कहा—'देख पगली, यह पिताजी का फ़ोटो है।' पत्नी ने शीशा फिर अपने हाथ में लेकर देखा—'यह तो स्त्री है।' यह झगड़ा पति-पत्नी में चल रहा था

एक गिरजा का पादरी आ पहुँचा। उसे देख पत्नी कहने लगी—'यही आपने इनको शिक्षा दी है? घर में एक नार रहते दूसरी से मित्रता करना! यह देखो, किसी स्त्री का फ़ोटो इन्होंने ट्रंक में रक्खा हुआ था। आज मैंने देख लिया।' पादरी ने कहा—'देखूं, किस स्त्री का फ़ोटो है।' शीशे में पादरी ने जो अपनी सूरत देखी तो कहने लगा, 'यह तो हमारे गिरजा का पादरी है। यह फ़ोटो मैं ले जाता हूँ।'

देखिए, संदेह ने कितना बवंडर उठा दिया!

पति या पत्नी के मन में एक-दूसरे के प्रति कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। यह सन्देह प्रेम का भयंकर शत्रु है। यह जीवन को कड़वा बना देता है। ग़रीबी या धन कमाने की लालसा ऐसे सन्देह पैदा करने में सहायक बनते हैं और कितनी अवस्थाओं में तो ये सन्देह वास्तविक सिद्ध होते हैं।

एक बी० ए० बी० टी० देवी का विवाह एक साधारण युवक के साथ उसकी अपनी इच्छा और पसन्द से हुआ। युवक को फ़ैक्टरी लगाने के लिए पत्नी ने अपने पिता से धन लेकर दिया। कारोबार धीरे-धीरे बढ़ने लगा। दफ्तर में एक टाइपिस्ट की आवश्यकता हुई। एक मुँह-चित्त लगती युवती को इस स्थान पर रख लिया गया। कुछ समय पश्चात् पत्नी को सन्देह हुआ कि टाइपिस्ट युवती की ओर पति अधिक ध्यान देने लगा है; दफ्तर में टाइप कम होता है और बातें अधिक होती हैं। तब एक दिन पत्नी ने पति से कहा कि 'अब आप अधिक समय बाहर क्यों रहने लगे हैं?' पति को पहले ही ज्ञात हो चुका था कि उसकी पत्नी को दफ्तर में जो रोमांस होता है उसका पता लग चुका है। इसलिए कहने लगा, 'वह एक ग़रीब घराने की लड़की है। उसका दिल बहला देता हूँ। तेरा क्या बिगड़ता है! युधिष्ठिर की भी तो तीन पत्नियाँ थीं!' पत्नी ने नम्रता से कहा, 'यह बात मैं सहन न कर सकूँगी।' पति कहने लगा, 'करो या न करो, ऐसा तो होता ही रहेगा!'

पति-पत्नी में प्रतिदिन प्रेम बढ़ने के स्थान पर कड़वाहट बढ़ने लगी। जब पत्नी ने एक दिन प्रबल वाणी से पति को इस कुकर्म से

रोका तो उसे यह उत्तर मिला कि 'यदि तुझे यह पसन्द नहीं तो घर से निकल जा। टाइपिस्ट लड़की ने अपने स्वार्थ के लिए एक गृहस्थ के प्रेम की नैया डुबो दी। वह युवती अब बहुत दुःखी है। जब पिता से उसने अपना दुःख बतलाया तो पिता ने कहा, 'तूने स्वयं ही यह लड़का पसन्द किया था और हमें मजबूर कर दिया था कि तेरा विवाह उसी के साथ किया जाये। ऐसे लट्टू होनेवाले युवकों का क्या भरोसा कि वे कब किसी और पर लट्टू हो जाएँगे!' इस प्रकार के लोगों में हार्दिक प्रेम नहीं होता; केवल लट्टू होने तक की उनकी दुनिया होती है।

एक और सच्ची घटना पढ़िये! बहुत बड़े धनी परिवार का एक युवक इस बात पर ज़िद कर बैठा कि मैं तो स्वीटी ही से विवाह करूँगा, अन्यथा प्राण दे दूंगा। माता-पिता ने स्वीटी के परिवार को मिन्नतें करके मना लिया। विवाह हो गया। कुछ समय व्यतीत हुआ, परन्तु मजनूँपन का भूत फिर सवार हो गया। युवक ने दूसरी युवतियों को घेरना शुरू कर दिया। स्वीटी ने रोका तो पति ने आँखें दिखाईं। प्रतिदिन रंजिश बढ़ने लगी और अब नौबत यहाँ तक आ पहुँची है कि पति कहता है तलाक ले लो। इस प्रकार की घटनाएँ बहुत होने लगी हैं और कारण यही है कि वास्तविक हार्दिक प्रेम नहीं है। या तो ऐसे समागम में धन का लोभ काम करता है या नौकरी मिलने की आशा।

इस क्षेत्र में लड़के-लड़कियाँ दोनों दोषी होते हैं। इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे लोग होते तो थोड़े ही हैं, परन्तु एक ही गन्दी मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। गृहस्थ को सुखी बनाने के लिए ऐसी मनोवृत्ति का तिरस्कार करना चाहिए। प्रेम को स्थायी बनाये रखने के लिए यह भी ज़रूरी है कि पति-पत्नी एक-दूसरे को समझने का यत्न करें। अब वे दिन तो गए जब पत्नी को घटिया जाना जाता था। दुनिया बदल गई; नारी भी बदली है। धन कमाने में अब पुरुष से पीछे नहीं रही। शिक्षा-क्षेत्र में तो नारी अधिक अग्रसर हो गई है। पश्चिमी हवाओं ने नारी में आत्म-सम्मान को जागरित कर

गया है; अतः पुरुष इस परिवर्तित वातावरण को देखकर नारी के हृदय की भावनाओं का तिरस्कार न करे। तभी प्रेम स्थायी हो सकेगा। ऐसे ही नारी को भी पुरुष के हृदय की पड़ताल करनी चाहिए। ज़रा-ज़रा-सी बात पर पति-पत्नी में सन्देह और अविश्वास का हो जाना हानिकारक है। आज समाज की जो अवस्था है, या तो इसके अनुसार सदाचार की परिभाषा बदलनी पड़ेगी, या फिर पुराने ढंग का रहन-सहन पुनः लाना होगा जो आज के युग में कुछ असम्भव-सा प्रतीत हो रहा है। एक पठित देवी ने कहा है कि 'नारी को स्वतन्त्रता क्या मिली, वह तो पहले से दुःखी हो गई। पहले पति कमा लेते थे, हम घर सँभालती थीं। अब यह हाल है कि नारियों को दफ्तरों में भी भटकना और अफसरों की हीन भावनाओं को भी देखना पड़ता है और घर का भी प्रबन्ध करना पड़ता है।' नारी का जीवन सुखी नहीं, दुःखी हो गया है। हाँ, नारी की 'मैं' को कुछ सन्तोष अवश्य मिला है; परिवार में सबको धमका सकती और पुरुष को आँख दिखा सकती है। परन्तु इससे पारिवारिक प्रेम तो नहीं बनता! परिवार में तो उलझनें बढ़ती जाती हैं। आधुनिक काल की नारी का हृदय यदि टटोला जाय तो ज्ञात होगा कि नारी विवाह के सम्बन्ध में अपनी मनमर्ज़ी करना अधिक अच्छा समझती है। दूसरी बात यह नज़र आती है कि वह शीघ्र माता बनना पसन्द नहीं करती; और तीसरी यह है कि वह किसी की हुकूमत में रहना अच्छा नहीं समझती। पुरुष का हृदय टटोला जाय तो पता लगेगा कि वह ऐसी पत्नी चाहता है जो उसी की होकर रहे; उसके इशारे पर चले; अपने साथ पर्याप्त धन लाए तो अधिक अच्छा, और यदि कमाऊ मिले तो और भी अच्छा; घर में आए तो परिवार का संगठन बनाए रक्खे। जब इन दोनों प्रकार के हृदयों का समन्वय हो, तभी प्रेम बना रह सकता है।

पुरुष को यह तथ्य सदा सामने रखना चाहिए कि गृहस्थ गृहिणी ही से होता है और नारी ही शास्त्रों से लेकर आधुनिक काल तक आदर तथा मान की दृष्टि से देखी जाती है। अतः पत्नी की आन्तरिक भावनाओं को जानकर अपने प्रेम की मात्रा को बढ़ाते रहना ही

उचित है।

चौथा साधन 'मितव्ययिता'—घर में कमानेवाले जो कमाकर लाते हैं, उसी आय के अन्दर अपना व्यय रखने से सुख बढ़ता है। जितनी चादर देखो, उतने पाँव फैलाओ। वेद ने पत्नी का एक गुण यह भी बतलाया है कि वह खर्च मर्यादा से करे। न बहुत उदार हो, और न अति कंजूस हो। खाने, पहनने और रहन-सहन में अपनी आमदनी का ध्यान परिवार का हर मेम्बर रक्खे। एक बड़ी कठिनाई जो खर्च में आती है, वह है आजकल का रहन-सहन तथा पहनावा। कितने ही परिवार यह शिकायत करते देखे गये हैं कि न चाहते हुए भी ऐसे वस्त्र खरीदने पर मजबूर होना पड़ता है जिनकी ज़रूरत नहीं होती। मर्यादा से बढ़कर जो लोग धनी हो जाते हैं, उनके घरों में कपड़ों के अम्बार लग जाते हैं; फ़ैशन की भरमार हो जाती है। मैं फ़ैशन का विशेष विरोध नहीं करता; अपने-आपको चाक-चौबन्द तथा सँवारकर रखना चाहिए। पुराने समय की यह कहावत अब तक चली आ रही है कि 'खाइये मन-भाता, पहनिये जग-भाता'। सर्वथा ऊलजलूल बनकर रहने से तो आज के समाज में कोई स्थान ही नहीं मिलता। अतः निरन्तर बदलनेवाले तौर-तरीकों को अपने समक्ष रक्खो, परन्तु यह याद रहे कि वस्त्र शरीर को ढाँपने के लिए पहना जाता है, शरीर की प्रदर्शनी करने के लिए नहीं पहना जाता। ऐसा फ़ैशन किस काम का जो काम-वासना की आग भड़का दे! फ़ैशन को भी मर्यादा में रक्खो! हमारा भोजन शरीर को स्वस्थ रखनेवाला हो। रसना को हर प्रकार का रस चखाओ, परन्तु रोगी न हो जाओ। साड़ियाँ, कपड़े और कोट भी खरीदो, परन्तु जेब की ओर भी ध्यान रक्खो। देवियों में एक रोग यह होता है कि दूसरी देवियों के भूषण तथा वस्त्र देखकर उनकी यह इच्छा होने लगती है कि वे भी वैसे ही ज़ेवर तथा कपड़े प्राप्त करें। हरएक अच्छे पति की इच्छा होती है कि वह पत्नी की इच्छा पूरी करे। परन्तु पल्ले ही कुछ न हो तो फिर क्या किया जाये? ऐसी अवस्था में समझदार पत्नी तो चुप साध लेती है और जो पत्नी नहीं, 'पिटनी' होती है, वह परिवार को दुःखी कर देती है।

अब रही स्वादु खाने की बात ! स्वादु खाना केवल वही नहीं होता जो बहुत कीमती हो। 'महाभारत' में बड़ा सुन्दर प्रसंग आता है कि स्वादु भोजन कौन खाते हैं। यह श्लोक देखिये—

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ।। महा० ।।

'दरिद्र लोग सदा ही स्वादु बढ़िया भोजन करते हैं, क्योंकि भूख इनके भोजन को स्वादिष्ट बना देती है जो धनियों में दुर्लभ है।'

दिन-भर मेहनत तथा कार्य और परिश्रम से क्षुधा चमकती है और साधारण दाल-रोटी भी अधिक स्वादु प्रतीत होती है; और अधिक धनी लोग, जो कोई शारीरिक कार्य नहीं करते, उनको ३६ प्रकार के भोजन भी स्वाद नहीं देते; अतः भोजन स्वादु बनाना है तो अधिक धन खर्च करने से नहीं बनेगा, अपितु शरीर को थकाने से बनेगा।

गृहस्थी के लिए मितव्ययी होना भी इसलिए आवश्यक है कि उसने केवल अपने ही परिवार की पालना नहीं करनी; अपने तथा पत्नी के सम्बन्धियों को भी देखना है; देश तथा जाति की आवश्यकताओं को भी देखना है; प्रारम्भ से जो दान की प्रथा चली आ रही है, उसपर भी दृष्टि रखनी है।

समाज का कोई व्यक्ति दीनता में न रहे, इसके लिए दीनों-अनाथों की सहायता करना और आड़े समय में मित्र-बन्धुओं की सहायता करना गृहस्थी के धर्म का एक अंग है।

इस विषय में वेद की आज्ञा देखिए—

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते ।।
ऋ० १०।११७।१।।

देवताओं ने भूख को ही मृत्यु नहीं बनाया, तृप्त होकर खाने-वाले को भी मृत्यु आ पकड़ती है। उधार देनेवाले का धन लुट नहीं जाता और जो दान से मुंह फेरता है, वह भी अपने लिए सहायक नहीं पाता है। (परमात्मा) उसी को देता है जो दूसरों की सहायता करता है।'

य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

'वह जो अन्नवान् होकर, रोटी की कामना से शरण में आए दीन, अनाथ और दुखिया के लिए अपना मन कड़ा कर लेता है, वह कभी अपने लिए सहायक नहीं पाता।'

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥
ऋ० १० । ११७ । ५ ॥

'धनी को चाहिए कि आर्थिक याचक को यथाशक्ति अवश्य दे और अपनी दृष्टि बड़े लम्बे मार्ग पर रक्खे, क्योंकि धन रथ के पहिये की तरह घूमता है। आज एक के पास है तो कल दूसरे के पास जाता है।'

इस मन्त्र में लम्बे मार्ग पर दृष्टि रखने की जो बात कही है, उसका प्रयोजन यह है कि सावधान होकर अपने भविष्य पर दृष्टि रक्खो, न जाने उसे भी सहायता की कभी आवश्यकता पड़ जाय।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥
ऋ० १० । ११७ । ६ ॥

'वह मूर्ख अन्न का व्यर्थ लाभ करता है। मैं कहता हूँ वह तो उसका नाश ही है, जो न ईश्वर के मार्ग पर लगता है, न ही मित्र को सहायता देता है; अकेला खानेवाला पापी होता है।' कितने प्रबल शब्दों में वेद ने आदेश दे दिया है—अकेले न खाओ, बाँटकर खाओ! यदि गृहस्थी मितव्ययी होगा, तभी दूसरों की सहायता कर सकेगा।

अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते न चले जाओ। जितनी कम जरूरतें होंगी, उतना ही सुखी परिवार होगा। पहले मुसलमानों के सम्बन्ध में यह मशहूर था कि आमदनी बढ़ते ही वे नया विवाह कर लेते थे। हिन्दुओं के सम्बन्ध में तो ऐसी बात नहीं कही जाती; हाँ, यह सुना जाता है कि धन आने पर कंजूस हिन्दू तो नई फ़िक्स्ड रसीद बनवा लेता है और फ़िज़ूलखर्च हिन्दू कोई ऐसी चीज़ खरीद लेता है जिससे

कुछ आराम मिल सके। परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति समाज, जाति या देश के काम भी नहीं आते और न ही परिवार में सुख की मात्रा ही बढ़ा सकते हैं; अपना ही स्वार्थ साधते रहते हैं। गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि स्वास्थ्य तथा पोज़ीशन ठीक रखते हुए अपनी ज़ात पर मर्यादा से अधिक खर्च न करें। धन कमाने की कहीं मनाही नहीं; हाँ, धन के दुरुपयोग की मनाही की गई है। धन बढ़ाने के लिए तो वेद में कई बार आज्ञा दी गई है और गृहस्थी के लिए तो धन की बड़ी भारी आवश्यकता है। अब विरक्त साधुओं में भो सबसे बड़ा योगी और पहुँचा हुआ वही समझा जाता है, जिसका आश्रम-मठ लाखों रुपयों से बना हो। माया का युग जो हुआ!

गृहस्थी को ये दो मन्त्र याद रखने चाहियें—

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
तन्मे भूयो भवतु मा कनीयोऽग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध॥
अथर्व० ३। १५। ५॥

'हे दिव्य शक्तियो! धन के द्वारा धन (की वृद्धि) चाहता हुआ मैं, जिस धन से व्यापार चलाता हूँ वह मेरा धन बढ़ता चला जाये। कभी कम न हो। हे प्रकाशस्वरूप! लाभ की नाशक प्रवृत्तियों को हवि से परे हटा!'

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः। तस्मिन् म इन्द्रो रुचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः॥६॥

'हे दिव्य शक्तियो! धन के द्वारा धन की वृद्धि चाहता हुआ मैं जिस धन से कारोबार चलाता हूँ उसके लिए मेरे में आगे बढ़ने, सबकी पालना करने, दूसरों को जीवन-प्रेरणा देने, सौम्यता और अग्नि की तरह सदा अपने कर्त्तव्य को निभाते चले जाने की रुचि बनी रहे।'

इस मन्त्र में इन्द्र, प्रजापति, सविता, सोम और अग्नि, ये शब्द आये हैं। जो इन्द्र की तरह आगे बढ़ने, अपने परिवार और बन्धुओं की प्रजापति की तरह पालना करने, सविता की तरह सबका हौसला बढ़ाने, निराशा के कूप में गिरे को निकालकर प्रेरणा देने, कभी क्रोध न आने और अग्नि की तरह चमक तथा गर्मी देने के गुण अपने अन्दर रखता

है, वही धन कमाने में सफल होता है। धन कमाना और उसका उचित व्यय करना गृहस्थ के सुख को बहुत बढ़ा देता है।

पाँचवाँ साधन 'आध्यात्मिक वातावरण'—गृहस्थ में सुख सदा विराजमान रहे, इसके लिए पाँचवाँ साधन यह है कि परिवार में आध्यात्मिक वातावरण स्थिर किया जाये। आज के बहुधा परिवारों में ऐसी स्थिति नहीं है। शरीर को कैसे सजाया जाये, मन को कैसे लुभाया जाये, रसना की तृप्ति कैसे की जाये, यही प्रसंग चलते हैं। कभी किसी मैच की कमैंट्री चल रही है; कभी ऐक्टरों और नायिकाओं पर टीका-टिप्पणी हो रही है; कभी ईर्ष्या-द्वेष की बात चल रही है; कभी बॉय-फ्रैंड या गर्ल-फ्रैंड का किस्सा सुना जा रहा है; कभी राजनीति की चर्चा हो रही है; कभी आजकल के साधुओं की ख़बर ली जा रही है; कभी एक चिन्ता, कभी दूसरी चिन्ता में मूड बिगाड़ा जा रहा है। ऐसे परिवारों में सुख, चैन, शान्ति कहाँ ?

प्रारम्भ ही से जिन परिवारों में प्रभु-भक्ति, ईश्वर-विश्वास, परमात्मा के प्रति श्रद्धा की भावना का बीज बोया जाता है, वहाँ आध्यात्मिकता के सुन्दर पुष्प खिलने लगते हैं और प्रेम, सुख तथा सन्तोष की सुगन्धित वायु बहने लगती है। अपने मकान में एक स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ पहुँचकर समझा जाये कि हम प्रभु-मन्दिर में आ गये हैं। वैसे प्रभु-मन्दिर तो हरएक व्यक्ति का अपना हृदय है, परन्तु बाहर के स्थान का भी प्रभाव हृदय पर पड़ता है। ऐसे कमरे, बराण्डे या कोने में सारा परिवार दिन में एक बार तो अवश्य बैठ जाये; बैठे भी पूरी श्रद्धा-भक्ति से, दिखलावे के लिए नहीं; परिवार के सारे सदस्य - पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, सब-के-सब पहले प्रभु-भक्ति का एक गीत पूरी मस्ती से गायें; हवन-यज्ञ कर सकें तो सर्वोत्तम। देव-यज्ञ गृहस्थी का मुख्य कर्त्तव्य है; सन्ध्या-मन्त्रों का भी उच्चारण करें। अर्थ आते हों तो चित्त अधिक आनन्द अनुभव करेगा। फिर किसी धार्मिक ग्रन्थ से एक-दो पन्नों का पाठ किया जाये, और अन्त में दत्तचित्त होकर अपनी भाषा में प्रार्थना की जाये। ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना के मन्त्रों का अर्थ-सहित पाठ किया जाये। पढ़नेवाले बच्चों के हाथों में

ऐसे पुस्तक दिये जायें जो मनोरंजन के साथ उनमें प्रभु-भक्ति का अंकुर बो दें। अपने पूर्वजों तथा आज के धार्मिक व देशहितैषी सेवकों के जीवन-चरित्र उन्हें पढ़ने के लिए दिये जायें और इन पुस्तकों में से वर्ष में दो बार उनकी परीक्षा ली जाये और उन्हें उनकी मनमर्ज़ी के पारितोषिक दिये जायें।

प्रभु की प्रार्थना-उपासना गृहस्थाश्रम में माधुर्य और सुख की वृद्धि करेगी। महर्षि दयानन्द ने तो उपासना और प्रार्थना के बड़े लाभ लिखे हैं। 'सत्यार्थप्रकाश' के सातवें समुल्लास में महाराज जी लिखते हैं कि—

"जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष-दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिए परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिए। इससे इसका फल पृथक् होगा, परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सबको सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता, वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है; क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिए दे रक्खे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना, कृतघ्नता और मूर्खता है।"

संसार में कौन है ऐसा जिसपर कष्ट या दुःख की घड़ियाँ नहीं आतीं! ईश्वर-प्रार्थना हमें ऐसे कठिन समय में धैर्य से गिरने नहीं देती।

महात्मा गांधी ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि "ईश्वर-प्रार्थना ने मेरी रक्षा की। प्रार्थना के आश्रय के बिना मैं कब का पागल हो गया होता।"

प्रार्थना के बिना जीवन मुझे नीरस और शून्य प्रतीत होता है। शरीर के लिए भोजन की उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी आत्मा के लिए प्रार्थना की आवश्यकता है। ईसा और मुहम्मद को प्रार्थना से ही

प्रकाश मिला। वे प्रार्थना के बिना जीवित नहीं रह सकते थे। प्रार्थना ही के कारण राजनैतिक आकाश निराशा के बादलों से घिरा रहने पर भी मेरी आन्तरिक शक्ति कभी भंग नहीं हुई। महात्मा गांधी ने तो अध्यात्मवाद को बहुत ऊँचा स्थान दिया है। उनका कथन है 'अध्यात्मवाद के बिना प्राप्त स्वराज्य की रक्षा नहीं की जा सकेगी।' और देख लीजिये कि आज अध्यात्मवाद के बिना देश की कितनी दुर्गति हो रही है! इसी प्रकार जो परिवार बहुत धनी, वैभवशाली और पश्चिमी रंग में रंगे हुए हैं, यदि उनमें आत्मा-परमात्मा और रूहानी प्यार नहीं तो वे नरक ही में पड़े हुए समझने चाहिएँ।

कुछ लोगों ने एक ग़लत धारणा बना रक्खी है कि गृहस्थ में प्रभु-भक्ति नहीं हो सकती; न योग इत्यादि हो सकता है। यह बात सर्वथा निराधार है। जितने बड़े-बड़े ब्रह्मचारी, योगी, प्रभु-भक्त हो चुके हैं उनमें अधिकतर गृहस्थी थे, जैसे शिवजी महाराज, भगवान् कृष्ण, राजा अश्वपति, योगी याज्ञवल्क्य, माता मन्दालसा, गुरु नानक, परमहंस रामकृष्ण इत्यादि। सत्य तो यह है कि अध्यात्मवाद को परखने और आत्मविज्ञान को प्राप्त करने का जितना सुअवसर गृहस्थ में है, और कहीं नहीं। यहाँ पगे-पगे परीक्षा भी होती रहती है कि किस-किस विषय पर संयम प्राप्त हो चुका है। यम-नियम की पूरी साधना गृहस्थ में है। गृहस्थी का यह परम कर्त्तव्य है कि अपने परिवार को प्रभु-भक्ति, ओम्-सिमरण, गायत्री-जप, स्वाध्याय, सत्संग, सत्य, नम्रता, प्रमभाव, भ्रातृ-भाव, विश्व-प्रेम, देशहित, सदाचार इत्यादि के लाभ बार-बार बतलाता रहे। कभी-कभी अपने गृह पर किसी विद्वान् अनुभवी साधु-सन्त को बुलाकर सत्संग का रंग परिवार पर चढ़ाया करें। श्री रामकृष्ण परमहंस से एक सब-जज ने पूछा कि 'क्या गृहस्थ में रहकर मनुष्य ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है?'

परमहंस ने उत्तर में कहा—'अवश्य गृहस्थ को तत्त्वज्ञान हो सकता है और वह ईश्वर-दर्शन भी कर सकता है। जब भगवान् का नाम लेने और सुनने मात्र से ही रोमांच हो जाये और आँखों में से सच्चे प्रेम के आँसू बहने लगें तो समझना चाहिए कि कामिनी-कांचन में आसक्ति

नहीं-रही और ईश्वर का अनुभव हो गया है। दियासलाई सूखी होती है तो थोड़ी-सी ही रगड़ से जल जाती है; गीली हो तो कितनी ही रगड़ो, वह न जलेगी। परिवार में अध्यात्म-वातावरण बनाए रखने के लिए केवल प्रार्थना-उपासना ही पर्याप्त नहीं है, इसके साथ सारे परिवार को आत्मनिरीक्षण भी करना चाहिए।'

शान्त बैठकर यह विचार कीजिये कि आज मुझसे कोई ग़लती तो नहीं हुई? किसी भाई-बहन को दुःखी तो नहीं किया? मेरी वाणी से कोई कड़वा वचन तो नहीं निकला? माता-पिता की किसी आज्ञा का उल्लंघन तो नहीं किया? स्वार्थवश परिवार में शोक की मात्रा तो नहीं बढ़ा दी? इसी प्रकार के कितने ही प्रश्न अपने-आप से पूछिये। यदि कोई त्रुटि हो गई हो तो मन में संकल्प कीजिये कि अब फिर यह ग़लती नहीं होगी। इसी को आत्म-निरीक्षण कहते हैं। ऐसा करने से परिवार के मेम्बरों में एक-दूसरे के प्रति मनमुटाव नहीं होता और आध्यात्मिकता बनी रहती है। जिस परिवार में परमात्मा को अपना प्रियतम समझा जाता है, वहाँ प्रभु-महिमा स्वयमेव प्रकट होती रहती है और प्रभु-गुण गाने से परिवार कितनी ही बुरी बातों से बचा रहता है; साथ ही परमात्मा की कृपा का पात्र वह परिवार बना रहता है। भक्ति में अग्रसर होते-होते परिवार का सीधा सम्बन्ध परमात्मा के साथ हो जाता है और तब परिवार की विघ्न-बाधाएँ अपने-आप दूर होती रहती हैं।

परमात्मा के प्रति ऐसा प्रेम तब सिद्ध होगा जब परिवार का हरएक सदस्य एक-दूसरे को हार्दिक तथा निस्स्वार्थ प्यार करे। यदि कोई सदस्य यह कहे कि मैं परमात्मा को प्यार करता हूँ, उसके नाम का स्मरण करता हूँ और परिवार के मेम्बरों से झगड़ा करे तो समझो कि उसका ईश्वर-प्रेम केवल कथन में है। जब दृष्टि में आनेवाले व्यक्ति को प्यार नहीं किया जा रहा, तो जो दृष्टि में नहीं आता उसको प्यार करने की बात जँचती नहीं।

जिस परिवार ने प्रभु के आगे आत्मसमर्पण कर दिया, उसके

योग-क्षेम के ज़िम्मेदार प्रभु बन जाते हैं और सन्मार्ग की ओर जाते हैं।

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं
यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि
बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम्॥

—ऋ० २।२३।४॥

'हे प्रभो! तुम अपने जन को सुनीतियों से चलाते हो और उसकी रक्षा करते हो। जो तेरे लिए देता है (जो अपने-आप को तेरे अर्पण करता है) उसको दरिद्रता नहीं छूती। तू ब्रह्म (भक्तों-विद्वानों) के द्वेषियों को तपानेवाला है। उनके क्रोध का नाशक है। हे बृहस्पते! तेरी यह महिमा है।'

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन
नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे
यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते॥

—ऋ० २।२३।५॥

'उसको न किसी ओर से शोक प्राप्त होते हैं, न उसको शत्रु दबाते हैं, न वंचक। सारे बहकानेवालों को उस जन से तुम परे हटाते हो जिसके रक्षक बनकर हे ब्रह्मणस्पते, तुम स्वयं रक्षा करते हो।' जब स्वयं वेद भगवान् आदेश दे रहा है, तब परिवार में ऐसी उदात्त भावना को क्यों न जागरित किया जाये और परिवार में अध्यात्मवाद की ज्योति प्रज्वलित करके दुःख, चिन्ता, वैमनस्य के अन्धकार को क्यों न भगा दिया जाये!

ईश्वर-विश्वास तथा मानवता का व्यवहार आध्यात्मिकता के लिए बहुत आवश्यक है। ईश्वर-विश्वास का मतलब है भरसक प्रयत्न करना और जो फल मिले उसपर प्रसन्न होना; यह भी समझना कि हमारी दृष्टि छोटी है, प्रभु की बहुत लम्बी दृष्टि है। हमारी अपेक्षा प्रभु को हमारे कल्याण का अधिक ध्यान है। यदि कोई घटना ऐसी घट गई है

...मारी इच्छा के विरुद्ध है तो घबराओ नहीं; क्या पता कि कुछ समय के पश्चात् वही घटना आपके भले के लिए सिद्ध हो जाये ! प्रभु की इच्छा के अधीन रहने से शक्ति मिलती है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि "क्या लाभ है भक्ति का ? भक्त और अच्छे लोगों को कष्ट उठाते ही देखा जाता है।" बात यह है कि जो अच्छे कीमती रेशमी कपड़े होते हैं उन्हीं को रगड़कर धोया और साफ किया जाता है। रद्दी-फटे कपड़ों को तो साबुन लगाकर कोई नहीं धोता। प्रभु-प्यारे ही दुःख पाते देखे जाते हैं। इन्हीं पर कष्ट-क्लेश इसलिए आते हैं कि ये ईश्वर के प्यारे हैं। प्रभु चाहता है कि ये पवित्र ही रहें। इसलिए दुःख से भयभीत न हो जाओ। प्रसन्नता से दुःख सहन करने से फिर यह 'सहन करना' तप में बदल जाता है।

परन्तु यह तो केवल तप की बात है। वास्तविक तथ्य यह है कि जैसा भी बीज बोया जाएगा, फल वैसा ही मिलेगा; अतः प्रभु-भक्ति सुख की ओर ही ले जाती है, दुःख की ओर नहीं। ये पाँच साधन गृहस्थ को सुखी बनाने के लिए लिख दिये गए हैं। इन साधनों को प्रयोग में लाइये और प्रत्यक्ष देखिये कि आपका गृहस्थ सुख की हिलोरें लेता है या नहीं। प्रभु-प्रेम से ओत-प्रोत कुछ मन्त्रों का पाठ कीजिये—

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

—ऋ० ७। ५४। ३॥

'हे वास्तोष्पते (घर के मालिक प्रभु), तेरी संगति जो कल्याणमयी, सुहावनी और सीधे मार्ग पर चलनेवाली है, उससे हम सदा संगत रहें। सदा भली-भाँति हमारी रक्षा करो ! जब हम काम करते हैं या आराम करते हैं, हे रक्षक शक्तियो ! सब प्रकार के कल्याणों के लिए सदा हमारी रक्षा करो !'

प्रतिज्ञा न भूलिये—

विवाह-मण्डप में पवित्र अग्नि के समक्ष वर तथा कन्या जो प्रतिज्ञा करते हैं, वह यदि स्मरण रक्खी जाये, और उसपर आचरण किया जाये तो गृहस्थ स्वर्ग-धाम बन जाये।

देखिये, वर-कन्या क्या कहते हैं—

ओं समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥

—ऋ० १० । ८५ । ४७ ॥

महर्षि ने इसका अर्थ यह लिखा है—

'इस यज्ञशाला में बैठे हुए विद्वान् लोगो! आप निश्चय करके जानें कि हम दोनों अपनी प्रसन्नतापूर्वक गृहस्थाश्रम में एकत्र रहने के लिए एक-दूसरे को स्वीकार करते हैं कि हम दोनों के हृदय जल के समान शान्त और मिले रहेंगे। जैसे प्राण-वायु हमें प्रिय है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे से सदा प्रसन्न रहेंगे। जैसे धारण करनेहारा परमात्मा सबमें मिला हुआ सब जगत् को धारण करता है, वैसे हम दोनों एक-दूसरे को धारण करेंगे। जैसे उपदेश करनेहारा श्रोताओं से प्रीति करता है, वैसे हम दोनों की आत्मा एक-दूसरे के साथ दृढ़ प्रेम को धारण करे।'

कितनी सुन्दर कविता इस वेद-मन्त्र में है! दोनों, वर तथा कन्या कहते हैं कि जैसे दो जल मिल जाते हैं, शान्त रहते हैं, ऐसे हम मिले रहें। जैसे वायु मानव का जीवन है, ऐसे हम एक-दूसरे का जीवन हैं। जैसे परमात्मा सबका धाता है, वैसे हम एक-दूसरे को धारण करते रहें। जैसे उपदेशक श्रोताओं के कल्याण के लिए उनसे प्रीति करता है, वैसे हम दोनों करें।

इससे अगले मन्त्र में भी यही प्रतिज्ञा है कि हम दोनों अपनी इच्छा से प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं। परमेश्वर हम दोनों के मन परस्पर अनुकूल करें—

ओं भूर्भुवः स्वः। अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्देवकामा स्योना शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥

—ऋ० १० । ८५ । ४४ ॥

'प्राणदाता, दुःख-विनाशक, सब सुखों के दाता, रक्षक प्रभु की कृपा और अपने उत्तम पुरुषार्थ से (हे वधू) तेरी दृष्टि कभी क्रूर न हो, तू प्रियदृष्टि हो। मंगल करनेहारी, पति का जीवन बढ़ानेवाली, पशुओं को भी सुख देनेवाली, पवित्र अन्तःकरण-युक्त, सदा प्रसन्न-चित्त, तेज,

...ती, सुन्दर, शुभ गुण, कर्म, स्वभाववाली, उत्तम वीर पुत्रों को जन्म देनेवाली, परमेश्वर की भक्त हो, सुखदायिनी हो, कल्याण लानेवाली हो, मनुष्यों के लिए कल्याण लानेवाली हो, पशुओं के लिए भी कल्याण लानेवाली हो।'

विवाह-मण्डप में पति पत्नी का हाथ पकड़कर कहता है—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

—ऋ० १०। ८५। ३६॥

'हे वरानने! जैसे मैं ऐश्वर्य, सुसन्तान और सौभाग्य की बढ़ती के लिए तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ, मुझ पति के साथ जरावस्था को सुखपूर्वक प्राप्त हो।'

'तथा हे वीर! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिए आपके हस्त को ग्रहण करती हूँ। आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था-पर्यन्त प्रसन्न और अनुकूल रहिये। आपको मैं और मुझको आप आज से पति-पत्नी-भाव करके प्राप्त हुए हैं।'

'सकल ऐश्वर्य-युक्त न्यायकारी सविता परमात्मा और मण्डप में बैठे सब विद्वान् लोग, गृहस्थाश्रम-कर्म के अनुष्ठान के लिए तुझको मुझे देते हैं; हम कभी एक-दूसरे का अप्रियाचरण न करें।'

ओं भगस्ते हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीत्।
पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥

—अथर्व० १४। १। ५१॥

'हे प्रिये! ऐश्वर्ययुक्त मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूँ। तू धर्म से मेरी भार्या है और मैं तेरा गृहपति हूँ। हम दोनों मिलके घर के कामों को सिद्ध करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है, उसको कभी न करें जिससे घर के सब काम सिद्ध, उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती होती रहे।'

ओं ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः ।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ।।
—अथर्व० १४ । १ । ५२ ।।

'हे अनघे ! परमात्मा ने जिस तुझको मुझे दिया है, वही तू जगत्-भर में मेरी पोषण करने योग्य पत्नी हो ! हे प्रजापति ! तू मुझ पति के साथ सौ वर्ष तक सुखपूर्वक जीवन धारण कर !'

'हे भद्रवीर ! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए हैं। मेरे लिए आपके बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी, पालन करनेहारा देव कोई नहीं है; न मैं आपसे अन्य दूसरे किसी को मानूंगी। जैसे आप मेरे सिवा दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करेंगे, वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रीति-भाव से प्रेम न करूँगी।'

ओं अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसः कुलायम् ।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान् ।।
—अथर्व० १४ । १ । ५७ ।।

'हे कल्याण-क्रोड़े ! जैसे मन से कुल की वृद्धि को देखता हुआ मैं इस तेरे रूप को प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूँ, वैसे यह तू मेरी वधू मुझमें प्रेम से व्याप्त होके अनुकूल व्यवहार को प्राप्त होवे; जैसे मैं मन से भी इस तुझ वधू के साथ चोरी छोड़ देता हूँ (अर्थात् कोई कार्य तुझसे छिपाकर नहीं करूँगा) और किसी उत्तम पदार्थ को चोरी से भोग नहीं करता हूँ, वैसे ही यह वधू भी किया करे।'

तब वर और वधू प्रार्थना करते हैं—

ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु ।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम् ।।
पार० १ । ८ । ८ ।।

'हे वधू ! तेरे अन्तःकरण और आत्मा को अपने कर्म के अनुकूल धारण करता हूँ; तेरा चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। मेरी वाणी को तू एकाग्रचित्त से सेवन किया कर ! प्रजा का पालन करनेवाला परमात्मा तुझको मेरे लिए नियुक्त करे।'

हे प्रिय वीर स्वामिन् ! आपका हृदय, आत्मा और अन्तःकरण अपने प्रियाचरण-कर्म में धारण करती हूँ। आपका चित्त सदा मेरे चित्त के अनुकूल रहे। आप एकाग्र होकर मेरी वाणी का, जो कुछ मैं आपसे कहूँ, उसका सेवन सदा किया कीजिये क्योंकि आज से प्रजापति परमात्मा ने जैसे आपको मेरे आधीन किया है, वैसे मुझको आपके आधीन किया है।'

पतिव्रत-धर्म तथा पत्नी-धर्म का कितना सुन्दर विधान किया गया है !

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।
ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम् ॥
—पार० गृह्य० २। ३। ११ ॥

'हे वरानने ! जैसे सूर्य की कान्ति तथा विद्युत् सूर्यलोक एवं पृथिव्यादि में निश्चल है, जैसे भूमि अपने स्वरूप में स्थिर है, जैसे यह सब संसार प्रवाहस्वरूप में स्थिर है, जैसे यह प्रत्यक्ष पहाड़ अपनी स्थिति में स्थिर है, वैसे यह तू मेरी पत्नी मेरे कुल में सदा स्थिर रहे।'

ओं ध्रुवमसि ध्रुवन्त्वा पश्यामि ध्रुवैधि पोष्ये मयि।
मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिर्मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम् ॥
पार० गृह्य० १। ८। १९ ॥

'हे स्वामिन् ! जैसे आप मेरे समीप दृढ़ करके स्थिर हैं, जैसे मैं आपको स्थिर दृढ़ देखती हूँ, वैसे ही सदा के लिए मेरे साथ आप दृढ़ रहिएगा; क्योंकि जैसे मेरे मन के अनुकूल आपको परमात्मा समर्पित कर चुका है, वैसे मुझ पत्नी के साथ प्रजायुक्त होके सौ वर्ष-पर्यन्त कीजिये।'

पति भी इस प्रकार पत्नी को सम्बोधन करके यही प्रतिज्ञा करे।

इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट होता है कि वर-वधू का मिलाप परमात्मा ही की कृपा तथा प्रेरणा से होता है। पति-पत्नी का सम्बन्ध एक दिव्य सम्बन्ध है। यह कोई व्यापार नहीं, कोई काण्ट्रैक्ट नहीं; यह तो जन्म-जन्म का साथी बनना है। कितनी उदात्त-पवित्र भावनाओं से ओत-प्रोत ये पति-पत्नी बनते हैं !

'संस्कार-विधि' में विवाह तथा गृहस्थाश्रम-प्रकरण इतना महत्व का है कि इसका हर परिवार में वर्ष में एक बार तो अवश्य पाठ होना चाहिए। यहाँ तो थोड़े ही मन्त्र दिये जा सके हैं। पूरा लाभ उठाना हो तो 'संस्कार-विधि' का अध्ययन करना चाहिए।

पारिवारिक एकता

परिवार में सुख-शान्ति तथा एकता बनाए रखने के लिए इन मन्त्रों का भी पाठ कीजिये—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
—अथर्व० ३ । ५० । १ ॥

'मैं तुम्हारे लिए समान-हृदय, समान-मन होने तथा द्वेष से सर्वथा अलग होने की मर्यादा बनाता हूँ। तुम एक-दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने सद्यः जाये (नवजात) बछड़े को प्यार करती है।'

कितनी सुन्दर उपमा प्यार की दी गई है! गाय का बछड़े से कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। यह भी नहीं कि गौ बूढ़ी हो जाएगी तो बछड़े माँ की सेवा ही करेंगे। ऐसी कोई भी बात नहीं; फिर भी गौ अपने बछड़े को कितना प्यार करती है! कितना अथाह प्यार करती है! परिवार में रहनेवालो! एक-दूसरे को इसी प्रकार निस्स्वार्थ प्यार करो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥
—अथर्व० ३ । ३० । २ ॥

'पुत्र पिता का आज्ञाकारी हो, माता के साथ एक मनवाला हो, पत्नी अपने पति के लिए ऐसी वाणी बोले जो शहद से भरी हुई (बहुत मधुर) और हित से पूर्ण हो।'

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥
—अथर्व० ३ । ३० । ३ ॥

'मत भाई-भाई से द्वेष करे, मत बहिन-बहिन से द्वेष करे; एक-दूसरे के साथ सहमत होकर, एक-दूसरे के काम में साथी बनकर कल्याणकारी वाक् से वचन बोलो।'

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥
—अथर्व० ३।३०।४॥

'जिससे देवता (सात्त्विक वृत्तिवाले विद्वान्) आपस में अलग नहीं होते हैं और न एक-दूसरे से द्वेष करते हैं, वह (ब्रह्मवेद) तुम्हारे घर में हम स्थापन करते हैं, जो तुम्हारे सब पुरुषों (सारे मानवों) के लिए समान भक्ति उत्पन्न करनेवाला है।'

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् व संमनसस्कृणोमि॥
अथर्व० ३।३०।५॥

'अपने-अपने से बड़ों के आज्ञाकारी और उदार-हृदय बनो! अलग-अलग न हो जाओ! कार्यों को पूर्ण करते हुए (गृहस्थाश्रम की) गाड़ी को इकट्ठे मिलके खींचते हुए, एक-दूसरे के लिए सुन्दर प्रिय वचन बोलते हुए, मेरी ओर बढ़े आओ। मैं तुम्हें एक-दूसरे का साथ देनेवाले और समान मनवाले बनने की आज्ञा देता हूँ।'

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥
अथर्व० ३।३०।६॥

'तुम्हारे पानी पीने का स्थान इकट्ठा, तुम्हारे अन्न का भाग इकट्ठा हो (प्रेम के साथ इकट्ठे पियो-खाओ); एक जुए में तुमको एक-साथ जुड़ने की आज्ञा देता हूं। तुम सब मिलकर अग्नि का सेवन करो (अग्निहोत्र मिलकर करो); जैसे अरे (रथ की) नाभि के चारों ओर होते हैं ऐसे मिलकर कार्य करो।'

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु॥
अथर्व० ३।३०।७॥

'मैं तुम सब को इकठ्ठे मिलकर चलनेवाले (मिलकर उद्योग करने-वाले) और हार्दिक प्रेम के साथ समान भागोंवाले बनने की आज्ञा देता हूँ। देवताओं की भाँति अमृत (अमर जीवन) की रक्षा करते रहो, साँझ-सवेरे तुम्हारा सौमनस्य (प्रीतिभाव और शुभचिन्तन) बना रहे।'

अभि त्वामनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन॥

अथर्व० ७।३७।१॥

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तयाश्चन॥

अथर्व० ७।३८।४॥

'हे मननशील पुरुष! मैं तुझे अपने (प्रेम) वस्त्र से बाँधती हूँ कि जिससे तू मेरा ही रहे और दूसरी स्त्रियों की बात भी न करे। मैं प्रतिज्ञा कर रही हूँ और इस सभा में तू भी प्रतिज्ञा कर कि जिससे तू मेरा ही होवे।'



आरती

कृपा करो हे नाथ !



[श्री रणवीर जी की लिखी हुई यह आरती जो पूज्य स्वामी जी की कथा के अवसर पर गाई जाती रही है, प्रतिदिन पूजा-पाठ और हवन के बाद गाई जा सकती है ।]

विनय सुनो हे नाथ जी, दीन-बन्धु भगवान्
जो आये तुम्हरी शरण, उसका हो कल्याण ।।

तुम हो अभय दान के दाता,
तुम हो भवसागर के त्राता ।
तुम हो सन्तन-सुख शुभ रूपा,
रवि शशि सबके तुम हो भूपा ।।
रात दिना ये सब-कुछ तुमसे,
गर्मी सर्दी वर्षा तुमसे ।
फूल यहाँ पर, वृक्ष वहाँ पर,
तेरी महिमा कहाँ-कहाँ पर ।।
चन्दा में मुस्कानेवाले !
बादल में ओ गानेवाले !
सूरज में प्रकाश तुही है,
जल थल अग्नि प्रकाश तुही है ।।
रूप तेरा है कण-कण अन्दर ।
सारा जग है तेरा मन्दर ।।

भीतर बाहर सब जगह, तेरा ही विस्तार ।
नाम तेरा ही गूंजता, विश्व-रूप करतार ।।१।।

नदियाँ तेरा गीत सुनातीं।
'पार न पाया' कहती जातीं॥
घोर घटा जब नभ में आती।
गरज-गरज तव नाम सुनाती॥
लहरों के सौ हाथ उठाकर।
'तू ही, तू ही' कहता सागर॥
भौंरा फूलों के कानों में।
कहता नाम मधुर तानों में॥
और ये आँधी और बवंडर।
करते फिरते हैं हर हर हर॥
उछल-उछलकर जलती ज्वाला।
कर में लेकर भक्ति-प्याला॥
कहती पी ले प्रीतम प्यारे,
जग है सारा तेरे सहारे॥

जल, थल, पवन, आकाश में, परम पुण्य सुखधाम।
गूंज रहा है हर जगह, छिन-छिन तेरा नाम॥ २॥

सागर उछलें बल से तेरे।
सूरज चन्दा चाकर तेरे॥
नदियों में तूफान उठाता।
गिरि-गह्वर में ज्वाल जलाता॥
तेरे बल का पार न पाया।
सारा जग है तेरी माया॥
धनियों का धन तू ही तो है।
बलियों का बल तू ही तो है॥
निर्झर बनकर झर-झर करता।
दानी बनकर झोली भरता॥
शैशव में मुस्काता तू है।
यौवन मस्त बनाता तू है॥

फूलों, शूलों, धूलों में तू।
वृक्षों, पत्तों, नदियों में तू॥

जल, थल और आकाश में, तेरा है प्रभु वास।
तू ही तो करुणानिधि, सर्व जगत् की आस॥ ३॥

तुमको ही करुणाकर कहते।
तुझे दया का सागर कहते॥
तेरी करुणा अकथ कहानी।
दया तेरी से जीये प्राणी॥
तेरी दया से दीनदयाला।
शीतल होती है अघ-ज्वाला॥
सर्व जगत् में तव करुणाई।
दया, मया, माया, प्रभुताई॥
माँ की मधुमय ममता तू है।
त्राता सारे जग में तू है॥
दीन-शरण तू दीन-दयाला।
करुण-चरण तव परम कृपाला॥
करुणा का तव लिये सहारा।
पंगू पाते पार किनारा॥

अशरण-शरण हे पुण्य चरण, दीनबन्धु भगवान्!
करुणा करके राखिये, दास आपनो जान॥ ४॥

तुझ बिन अपना कौन सहारा?
तुझ बिन भव को कौन किनारा?
मात पिता प्रिय बन्धू तू है।
मीत हमारा केवल तू है॥
रात दिना हम तेरे सहारे।
रात दिना तू साथ हमारे॥

छोड़ तुझे अब जग के नाथा !
कहाँ झुकायें अपना माथा ?
किसे सुनायें विपदा अपनी ?
किसे दिखायें पीड़ा अपनी ?
तुझ बिन और नहीं जग-नाथा !
जिसे सुनायें अपनी गाथा ।।
सुननेवाला तू ही तो है ।
और हमारा जग में को है ?

करुणानिधि करुणा करो, अपना किंकर जान ।
मात-पिता सम राखियो, तेरी हैं सन्तान ।। ५ ।।

हमको दीजै प्रभु धन-धाना ।
यश-बल दीजै औ' सुख नाना ।।
देना हमको मान सुहाना ।
निज बल से बलवान बनाना ।।
रोग, शोक, भय, निर्बनताई ।
दूर रहे हमसे कठिनाई ।।
भरा-भरा यह घर हो सारा ।
गूंजे इसमें नाम तिहारा ।।
याचक-दुखिया जो कोई आये ।
अपने मन की आशा पाये ।।
सुख की वर्षा नित हो यहाँ पर ।
न हो दुःख का नाम यहाँ पर ।।
रात दिना हम बढ़ते जायें ।
धन-यश-कीरत-सुख मुस्कायें ।।

धनबल, यशबल, कीर्तिबल, भरे भरे भण्डार ।

तेरी करुणा से मिलें, हमको हे कर्तार ।। ६ ।।

हमको अपनी राह चलाना।
करुणामय निज-रूप दिखाना॥
गूंजे हरदम नाम तिहारा।
रिक्त न हो यह कोश हमारा॥
गीत तेरे हों मन में अपने।
तेरे ही बस देखें सपने॥
राह तेरी से हट ना जायें।
चाहे कष्ट हज़ारों आयें॥
जग के धन्धे पूरे करके।
पहुँचें पास तेरे भव तर के॥
अन्त समय जब आय हमारा।
अधरों पर हो नाम तिहारा॥
जब यह टूटे प्रभु जग-माया।
तेरे चरण की पायें छाया॥

सुखद चरण तेरे प्रभो, मेरा नत यह माथ।
चरण पड़े की लाज को, राखो दीनानाथ॥ ७॥

ओ३म् तत् सत्!



महात्मा आनन्द स्वामी कृत पुस्त

महामन्त्र
दो रास्ते
तत्त्वज्ञान
प्रभु-दर्शन
प्रभु-भक्ति
बोध कथाएँ
सुखी गृहस्थ
मन की बात
एक ही रास्ता
घोर घने जंगल में
मानव जीवन गाथा
भक्त और भगवान्
प्रभु-मिलन की राह
शंकर और दयानन्द
आनन्द गायत्री कथा
उपनिषदों का सन्देश
मानव और मानवता
यह धन किसका है ?
देश-भक्ति प्रभु-भक्ति
वैदिक सत्यनारायण व्रत कथा
दुनिया में रहना किस तरह ?
श्री म० आनन्द स्वामी सरस्वती जीवनी (उर्दू)
म हा मं त्र (उर्दू)
Gayatri Discourses (अंग्रेजी)

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

..ामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती कृत

वेद सौरभ
षड्दर्शनम्
प्रार्थनालोक
शिव संकल्प
दिव्य दयानन्द
ब्रह्मचर्य गौरव
आदर्श परिवार
ऋग्वेद शतकम्
यजुर्वेद शतकम्
सामवेद शतकम्
अथर्ववेद शतकम्
चतुर्वेद शतकम्
घरेलू ओषधियाँ
कुछ करो कुछ बनो
वाल्मीकि रामायण
यजुर्वेद - सूक्ति - सुधा
सामवेद - सूक्ति - सुधा
अथर्ववेद - सूक्ति - सुधा
ऋग्वेद का अक्ष - सूक्त
वेद - सौरभ (संक्षिप्त)
मर्यादा पुरुषोत्तम राम
वैदिक उदात्त भावनाएँ
विद्यार्थियों की दिनचर्या

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

स्वाध्याय योग्य पुस्तकें

सत्यार्थ प्रकाश	सम्पादक पं० भगवद्दत्त
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर
वैदिक सम्पदा	पं० वीरसेन वेदश्रमी
वेदोद्यान के चुने हुए फूल	आचार्य प्रियव्रत
वैदिक वन्दन	पं० सत्यकाम विद्यालंकार
वेदभगवान बोले	प्रो० विष्णुदयाल एम० ए०
वैदिक संस्कृति का सन्देश	प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक रूप	" "
वेदार्थ विज्ञान	पं० रामशरण वशिष्ठ
वेदों में मूल प्रकृतिविज्ञान	" "
वेद और आत्मा	" "
ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य	पं० बिहारीलाल शास्त्री
वेद व्यावहारिक है	पं० रामचन्द्र देहलवी
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	" "
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का सरल अध्ययन	पं० विश्वनाथ विद्यालंकार
पूर्व और पश्चिम	प्रो० नित्यानन्द वेदालंकार
श्रीमद्दयानन्द प्रकाश	स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
श्री दयानन्द चित्रावली	पं० रामगोपाल विद्यालंकार
महर्षि द्वारा प्रतिपादित राज्यव्यवस्था	प्रशान्तकुमार वेदालंकार
स्वाध्याय संग्रह	स्वामी वेदानन्द तीर्थ
वेद का राष्ट्रगान	पं० राजनाथ पाण्डेय
कर्तव्य दर्पण	महात्मा नारायण स्वामी
महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्यसमाज	संकलन
हैदराबाद के आर्यों का संघर्ष और साधना	श्री नरेन्द्र

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

महर्षि दयानन्द की मूल प्रति से सम्पादित

...ामी

सत्यार्थप्रकाश

आठ महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त संस्करण है
इसमें सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक
विवेचनापूर्ण भूमिका सम्मिलित की गई है।
आधार-ग्रन्थ-सूची के साथ
पारिभाषिक शब्दों,
निर्दिष्ट व्यक्तियों एवं स्थानादि की
अकारादि क्रम से उपयोगी सूचियाँ दी गई हैं।
प्रत्येक अनुच्छेद पर क्रम-संख्या
प्रत्येक पृष्ठ पर विषय-सामग्री का संकेत-शीर्षक

छपाई एवं रूप-सज्जा में आकर्षक !
बढ़िया सिलाई और उत्तम बँधाई !

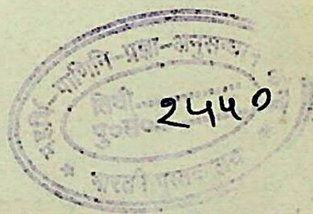
सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का चतुर्वेद-भाष्यकार
पण्डित जयदेव विद्यालंकार कृत समाधान के साथ
पहली बार लागत-मूल्य पर पढ़ें

संग्रहणीय संस्करण : मूल्य २५.०० केवल

प्राप्ति-स्थान

गोविन्दराम हासानन्द

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६


2440

...स्वामी सरस्वती कृत

...था-ग्रन्थ

तत्त्वज्ञान
प्रभुदर्शन
प्रभुभक्ति
मानव जीवन गाथा
भक्त और भगवान
वैदिक सत्यनारायण कथा
भगवान शंकर और दयानन्द
एक ही रास्ता
आनन्द गायत्री कथा
घोर घने जंगल में
महामन्त्र
सुखी गृहस्थ
उपनिषदों का सन्देश
बोध कथाएं
मानव और मानवता
प्रभुमिलन की राह
यह धन किसका है
दो रास्ते
महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती [जीवनी] रणवीर

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६